उदारवाद

राज, समाज और बाज़ार का नया पाठ

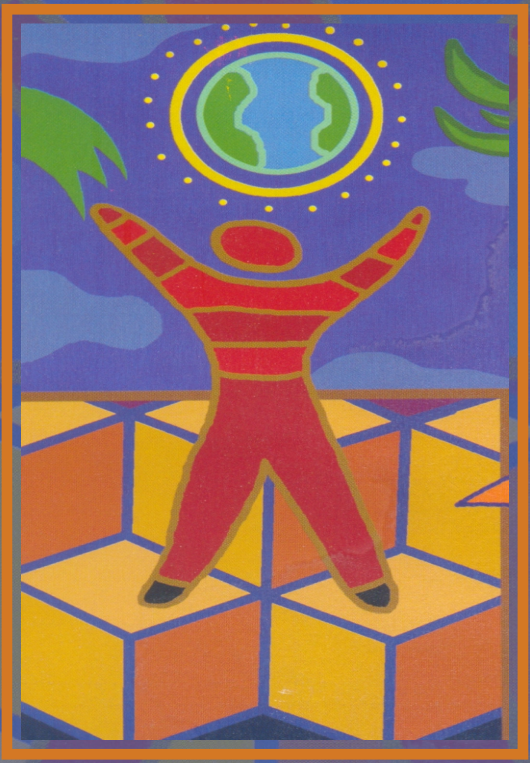

लेखक : सौविक चक्रवर्ती
अनुवादक : कौशल किशोर

उदारवाद

राज, समाज और बाज़ार का नया पाठ

(पुस्तक *फ्री योर माइंड* पर आधारित)

लेखक : सौविक चक्रवर्ती

अनुवादक : कौशल किशोर

सेंटर फॉर सिविल सोसाइटी

हमारे अन्य प्रका ान

आर्थिक स्वतंत्रता का संघर्श
आर्थिक स्वतंत्रता एक विस्मृत मानवाधिकार
नव लोकप्रबंधन
वार्ड पावर : डिसेंट्रलाइज्ड अर्बन गवर्नेंस
हैंडबुक ऑन न्यू पब्लिक गवर्नेंस
इकॉनोमिक फ्रीडम ऑफ द वर्ल्ड : 2006 एनुअल रिपोर्ट
स्टेट ऑफ गवर्नेंस : दिल्ली सिटिजन हैंड बुक 2006
टेराकोटा रीडर : ए मार्केट एप्रोच टू इनवायरमेंट
लॉ, लिबर्टी एंड लाइवलीहुड : मेकिंग ए लिविंग ऑन द स्ट्रीट
मोरालिटी ऑफ मार्केट्स
बी आर ि ानॉय : थियोरोटिकल विजन
बी आर ि ानॉय : इकोनोमिक प्रोफे ाीज
इकॉनोमिक फ्रीडम एंड डिवेलपमेंट
फ्री योर माइंड : बिगिनर्स गाइड टू पॉलिटिकल इकॉनोमी
प्रोफाइल्स इन करेज : डिसेंट ऑन इंडियन सोि ायलिज्म
मनी, मार्केट, मार्केटवालाज
फ्रीडमैन ऑन इंडिया
किसान बोले छे (गुजराती)
दृश्टिकोण श्रृंखला (व्यू प्वाइंट सीरीज)
स्वतंत्रता और समाज श ंखला (लिबर्टी एंड सोसाइटी सीरीज)

प्रथम संस्करणः 2006
© सेंटर फॉर सिविल सोसाइटी, 2006
लेखक – सौविक चक्रवर्ती; अनुवादक – कौ ाल कि ाोर

इस पुस्तक का पुनर्मुद्रण ''सर्वप्रथम सेंटर फॉर सिविल सोसाइटी, नई दिल्ली द्वारा प्रकाि ात'' सूचना के साथ किया जा सकता है।

सेंटर फॉर सिविल सोसाइटी
के–36, हॉज खास एंक्लेव, नई दिल्ली 110016
दूरभाशः 26537456 फैक्सः 26512347
ई–मेलः ccs@ccsindia.org, www.ccsindia.org

ISBN 81-87984-19-8

सौविक चक्रवर्ती द्वारा अपने पुत्र

गौरव

एवं उसकी हम उम्र पूरी पीढ़ी के लिए

'स्वतंत्रता के ज्ञान का उपहार'

अभी इसके लिए संघर्ष कर इसे प्राप्त करो और इसकी रक्षा करो। फिर अपनी आने वाली पीढ़ी को इन शब्दों के साथ सौंप दो –

सतत् जागरूकता ही स्वतंत्रता की कीमत है।

अनुक्रमणिका

	आभार	6
	भूमिका	**7**
1.	स्वयं को जानिए	10
2.	जनसंख्या : समृद्धि का एक कारण	12
3.	राजनैतिक बाजारों की विफलता	19
4.	सार्वजनिक सम्पत्ति एवं बाजार की विफलता	24
5.	मुक्त व्यापार	32
6.	सशक्त मुद्रा **I**	39
7.	सशक्त मुद्रा **II**	46
8.	रोजगार	51
9.	गरीबी	56
10.	पर्यावरण	62
11.	नौकरशाही एवं लोक–प्रशासन का भवि य	72
12.	ज्ञान	75
13.	सार्वजनिक सम्पत्तियाँ	79
14.	नैतिकता एवं धर्मनिरपेक्षवाद	82
15.	स्वतंत्रता एवं समानता	88
16.	राजनीति	91
17.	स्वस्थ्य लोक नीति के सिद्धान्त	94
18.	सेंटर फॉर सिविल सोसाइटी : एक नजर में	95

आभार

मैं सर्वप्रथम सौविक चक्रवर्ती का आभार व्यक्त करना चाहता हूँ, जिन्होंने न केवल अपनी महान कृति 'फ्री योर माइंड' को हिन्दी भाषा में प्रस्तुत करने की अनुमति दी वरन् पुस्तक के तैयार होने के दौरान अपने अमूल्य सुझाव दिए और मुझे, आवश्यकतानुसार विभिन्न परिवर्तनों की स्वीकृति दी।

यद्यपि मैंने शुरूआत करने का प्रयास किया परन्तु तद्नुसार सेंटर फॉर सिविल सोसाइटी, नई दिल्ली ने जिस प्रकार सहयोग किया, पुस्तक को तैयार करने में और प्रकाशित करने में सम्पूर्ण आर्थिक सहायता दी एवं विशेषकर डा० पार्थ जे० शाह एवं मनाली शाह ने जो उत्साहवर्धन किया, उसके लिए मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

पुस्तक को प्रस्तुत करने का श्रेय, मेरे गुरू, प्रोफेसर श्री एन.एन. पाण्डेय जी, संकायाध्यक्ष, शिक्षा एवं सहबद्ध विज्ञान संकाय, एम. जे. पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली को जाता है, जिनका मार्गदर्शन प्रत्येक पग पर मेरा मार्ग प्रशस्त करता है।

मेरी पत्नी श्रीमती आमनी एस. चौधरी, प्रवक्ता, जे.आर.एच.वि.वि. चित्रकूट, के सहयोग के बिना इस पुस्तक का तैयार होना असंभव था। प्रोफेसर श्री रामशकल पाण्डेय जी (पूर्व संकायाध्यक्ष, कला संकाय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) अस्वस्थ होते हुए भी पुस्तक का गहन अवलोकन किया और अमूल्य सुझाव दिए। मैं उनका ऋणी हूँ।

इसके अतिरिक्त डॉ० विद्यासागर सिंह, चित्रकूट एवं श्री संजय कुमार साह, नई दिल्ली ने पुस्तक का बारीकी से निरीक्षण किया एवं अतुलनीय सुझाव दिए। मैं उनका भी हृदय से आभारी हूँ।

जगह–जगह चित्र के माध्यम से पुस्तक को आकर्शक और सरल रुप देने का यह कार्य श्री बॉनी थॉमस के लिए ही सभंव था। मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

सभी पाठकों से पृष्ठपोषण एवं सुधार हेतु सुझाव आमंत्रित हैं, ताकि तद्नुसार द्वितीय संस्करण को और सम्पन्न बनाया जा सके।

कौशल किशोर

नवंबर, 2006

भूमिका

यह पुस्तक किन लोगों के लिए है ?

यह पुस्तक उन लोगों के लिए लिखी गयी है जो दुनिया के सबसे बड़े संवैधानिक लोकतंत्र के जागरूक नागरिक बनना चाहते हैं।

किसी दे ा के संविधान का उद्दे य सरकार की भाक्तियों को सीमित कर, उससे निर्धारित नियमों के अनुरूप कार्य कराना होता है। जबकि भारतीय संविधान सरकार को बेलगाम भाक्तियाँ प्रदान करता है तथा अपने नागरिकों के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारों तक को सुनि चत नहीं करता।

यह पुस्तक वि ोश तौर पर नवयुवकों एवं कि ोरों के लिए लिखी गई है। चौदह वर्श के आस–पास की आयु वाले भी इस पुस्तक को आसानी से समझ सकते हैं (ाायद कुछ को, कहीं, थोड़ी–बहुत मदद की आव यकता हो) इस पुस्तक को कि ोरों पर केन्द्रित करने का मुख्य उद्दे य उन्हें ''वोट देने के अधिकार'' को प्राप्त करने से पूर्व ि ाक्षित करना है।

हालाँकि यह पुस्तक सभी मतदाताओं, चाहे वे दन्त चिकित्सक हों, इंजीनियर हों या फै ान डिजायनर हों, के लिए उपयोगी होगी। कोई भी व्यक्ति जो यह जानने की इच्छा रखता है कि राजनैतिक–आर्थिक तंत्र कैसे कार्य करता है, इस पुस्तक से लाभान्वित होगा। यह पुस्तक उन प्रबंधकों (मैनेजर) के लिए बड़े काम की होगी, जिन्हें अपने मार्गद ान में किसी प्रतिश्ठान का राजनैतिक जगत के साथ तारतम्य स्थापित करना होता है। और ि ाक्षकों के लिए भी, जिनके लिए समाजवाद की आव यक खामियों से अवगत रहना और उसके बारे में बात करना जरूरी है।

वास्तव में आपको इस पुस्तक को पढ़ने की आवश्यकता क्यों है?

सरकार से मान्यता प्राप्त पाठ्य पुस्तकें आपको नागरिक ाास्त्र एवं भारतीय अर्थशास्त्र के बारे में ि ाक्षित करती हैं। जिस रूप में ये विशय पढ़ाये जाते हैं, उस रूप में ये आपको समसामयिक वस्तु स्थिति का सम्यक बोध नहीं कराते हैं। आपको वैसा ही पढ़ाया जाता है, जैसा कि समाजवादी राज्य आपको वि वास दिलाना चाहता है।

यदि आप वस्तुओं को भिन्न परिप्रेक्ष्य में – जैसे मुक्त बाज़ार के परिप्रेक्ष्य में – देखते हैं तो यह पुस्तक आपके लिए लाभकारी सिद्ध होगी। यह राज्य प्रायोजित समाजवाद के बिल्कुल विपरीत है। इस विचारधारा में सरकार–समाजवाद की भलीभाँति विस्तृत समीक्षा है जो सभी नागरिकों के लिए रुचिकर होगी।

और, सबसे पहले, ि ाक्षा को उदारवादी होना चाहिए। अर्थात् ि ाक्षाविदों को स्वतन्त्रता के मूल्य के बारे में जरूर पढ़ाना चाहिए (Educators must teach the value of freedom)। जब लोग यह जानेंगे कि स्वतन्त्र रहना क्यों उनके हित में है, तभी वे अपनी संवैधानिक स्वतन्त्रता का मूल्य समझेंगे और उसकी रक्षा के लिए तत्पर होंगे। स्वतन्त्रता का मतलब केवल राजनैतिक स्वतन्त्रता या स्वराज नहीं है वरन् इसका तात्पर्य आर्थिक स्वतन्त्रता से भी है अर्थात् जीविकोपार्जन तथा जीविका से प्राप्त कमाई को अपने पास रखने की स्वतन्त्रता। 1999 की अन्तर्राश्ट्रीय आर्थिक स्वतन्त्रता सूची (वर्ल्ड इकॉनॉमिक फ्रीडम इन्डैक्स– World Economic Freedom Index) में भारत 120वें स्थान पर था अर्थात् लगभग अस्वतन्त्र (mostly unfree) श्रेणी में, भारत का स्थान था। 120 वाँ स्थान आर्थिक रूप से दमित (economically repressed) दे ाों की श्रेणी से, मुि कल से, जरा सा ऊपर है और भारत की व्यापक गरीबी का यही सबसे प्रमुख कारण है। यह पुस्तक आपको बताएगी कि क्यों आपको आर्थिक रूप से स्वतंत्र होना चाहिए और कैसे इससे आपकी ही नहीं वरन् पूरे दे ा की आर्थिक द ाा में सुधार होगा।

ध्यान रहे, स्वतन्त्र समाज के तीन आधार–स्तम्भ होते हैं –

- लोकतन्त्र की राजनैतिक स्वतन्त्रता ।
- मुक्त बाजार की आर्थिक स्वतन्त्रता ।
- और स्वतन्त्रता का महत्त्व बताने वाली उदारवादी शिक्षा।

भारत में, हमारे पास सिर्फ एक – पहला – स्तम्भ है।[1] यह पुस्तक भोश दो स्तम्भों को मजबूत करने पर केन्द्रित है।

इस पुस्तक में मुख्य बात क्या है ?

[1] यहाँ यह जानना आव यक है कि ***जन प्रतिनिधित्त्व अधिनियम*** चुनावी प्रतिद्वंदिता को केवल समाजवादी दलों के बीच तक सीमित करता है। चूँकि संविधान समाजवादी है अतः प्रत्येक पंजीकृत दल समाजवादी है। इस प्रकार उदारवादी दलों के निर्माण की अनुमति नहीं है। इस प्रकार यह सच्चा उदारवादी लोकतंत्र नहीं है। यह एक विचार वि ोश के आधार पर भेद–भाव करता है।

अब्राहम लिंकन ने अपने पुत्र के ि ाक्षक को एक पत्र में लिखा था—

'' उसे सबकी बात सुनना सिखाइये परन्तु साथ ही उसे यह भी सिखाइये कि इन सभी सुनी हुई बातों को वह सच्चाई की कसौटी पर कसे तथा जो अच्छा भोश छनकर आये, केवल उसे ही स्वीकार करे। ''

यह पुस्तक आपके मस्तिश्क को सच की एक कसौटी प्रदान करेगी जिस पर आप सरकार द्वारा दी गयी समस्त सूचनाओं को परख कर, वास्तविकता का निश्यंदन कर सकेंगे। भीघ्र ही आपको यह अहसास हो जायेगा कि 'ज्ञान प्रदान करने के नाम पर, जो भी आपको पढ़ाया जाता है, वह कितना बकवास है।

आइये! पहले उदाहरण की ओर चलें!

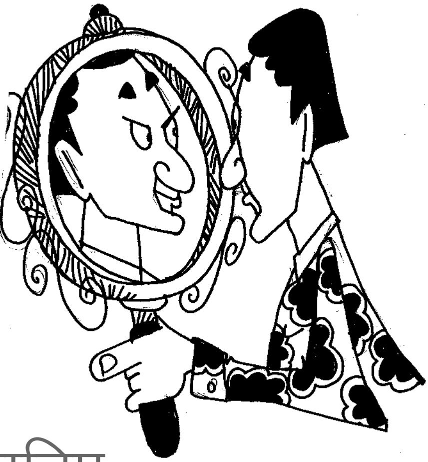

1

स्वयं को जानिए

यदि आप स्वयं का और अपने दोस्तों का ध्यान पूर्वक निरीक्षण करें तो, पायेंगे कि एक ऐसी वि   ोशता है जो आपको अन्य सभी जीवित प्राणियों से अलग करती है। यह है – ***व्यापार करने की योग्यता।*** दूसरे भाब्दों में, वस्तुओं का परस्पर लेन–देन करने की योग्यता।

यह एक जन्मजात योग्यता है। यहाँ तक कि छोटे–छोटे बच्चे भी लाभदायक व्यापार में संलग्न दिखाई पड़ते हैं। जैसे – ''अपने चिप्स में से थोड़ा–सा मुझे दो और मेरे बिस्किट्स में से दो बिस्किट ले लो''। व्यापार करने की यह योग्यता सभी में स्वाभाविक रूप से पाई जाती है और किसी को भी इसे अलग से सिखाने की आव   यकता नहीं पड़ती।

व्यापार करने की योग्यता, कुछ अन्य योग्यताओं, यथा उपकरण प्रयोग करने की या वस्तुओं के निर्माण की योग्यताओं से कहीं उच्च है। *'बुनकर चिड़िया'* (बया) बहुत बढ़िया घोंसले बनाती है परन्तु वे अन्य कीड़े पकड़ने में दक्ष अन्य पक्षियों के लिए कीड़ों के बदले घर बनाती नहीं नजर आतीं। कारण स्पश्ट है कि मनुश्यों जैसी व्यापार की योग्यता, इनमें नहीं होती। इस योग्यता के अभाव के कारण ये चिड़ियाँए अन्य पक्षियों से कीड़ों के बदले घोंसले का लेन–देन नहीं कर पातीं।

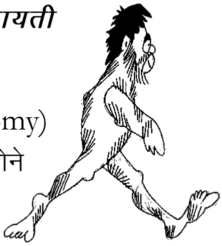

व्यापार करने की योग्यता हमें किफायती (Economic) बनाती है।

इसीलिए, मनुश्यों में एक अर्थव्यवस्था (economy) पाई जाती है। अन्य प्राणियों में व्यापार की योग्यता न होने के कारण अर्थव्यवस्था नहीं पाई जाती, जबकि वे प्राणी – जैसे बुनकर चिड़िया – कुछ न कुछ बना लेने की योग्यता रखते हैं।

इसीलिए हम मनुश्य प्रजाति के लोग ***होमो इकॉनॉमिकस*** (Homo Economicus) भी कहलाते हैं। हम पृथ्वी ग्रह के एकमात्र आर्थिक प्राणी हैं। हम सचमुच अद्वितीय हैं।

हम मनुश्यों को प्रकृति ने धन की उत्पत्ति करने के लिए वि ोश रूप से तैयार किया है। और धन की उत्पत्ति व्यापार से होती है।

आपका जन्म ही अमीर बनने के लिए हुआ है।

ज़रा सोचिये

- ❖ किस उम्र में एक बालक व्यापार करने की योग्यता प्रदर्शित करता है?
- ❖ क्या हमारी सबसे निकटस्थ प्रजाति के प्राणी - बंदर – व्यापार कर सकते हैं?

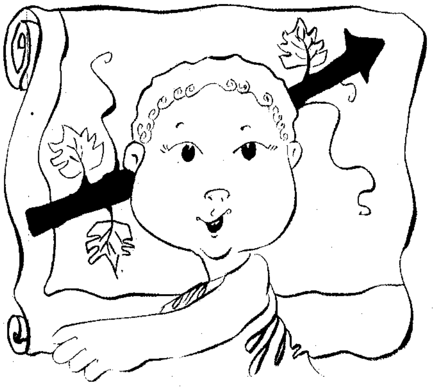

2

जनसंख्या : समृद्धि का एक कारण

जब ऐसा कहा गया है कि मानव (Homo Economicus) धन पैदा करने के लिए तैयार किया गया एक यंत्र है, तो, भारतीय अर्थ ाास्त्र में बताए जा रहे उस तर्क की जाँच करना अत्यन्त आव यक हो जाता है, जिसके अनुसार भारत की वि ााल जनसंख्या गरीबी का एक कारण है। यदि मनुश्य एक मात्र ऐसी प्रजाति है जो धन पैदा कर सकती है, तो, इसकी अधिक संख्या गरीबी का कारण कैसे हो सकती है? सच क्या है?

सच यह है कि नक ो पर अंकित प्रत्येक बिन्दु, जो किसी भाहर या कस्बे को प्रद ित करता है और घनी आबादी वाला है, अन्य स्थानों (यथा गाँव आदि जो नक ो पर नहीं दिखते) की अपेक्षा समृद्ध है। भीड़ भरी दिल्ली में खाली पड़े झुमरी तलैया के मुकाबले कहीं ज्यादा लखपति व करोड़पति, ज्यादा मोबाइल फोन या बड़ी कारें और तरण ताल हैं। स्वाभाविक रूप से प्र न उठता है – ऐसा क्यों? उत्तर के लिए हमें देखना होगा – अर्थ ाास्त्र की ओर। अर्थ ाास्त्र यानि *धन पैदा करने का अध्ययन* ।

चूँकि हम व्यापार कर सकते हैं, अतः अपने उन कार्यों में हम विशे ाज्ञता अर्जित करते हैं, जिन्हें हम ही सबसे अच्छे तरीके से कर सकते हैं और इन्हें दूसरों की उन वस्तुओं या कार्यों से बदल लेते हैं, जिन्हें वे सबसे अच्छी

तरह से कर सकते हैं। जानवरों की तरह, मनुश्य स्व–पर्याप्ती (self–sufficient)[1] होने की कोभिाभा नहीं करते हैं वरन् वे अपने लिए एक विभोश कार्यक्षेत्र चुनते हैं। इन विभिाश्ट कार्यक्षेत्रों में वे उन वस्तुओं या सेवाओं का उत्पादन करते हैं, जिनका बाज़ार अर्थव्यवस्था में विनिमय किया जा सके। किसान, मछुआरे गड़रिये, पत्रकार, दंत चिकित्सक, धोबी इत्यादि सभी इसी व्यवस्था के उदाहरण हैं। मनुश्यों के अतिरिक्त कोई भी अन्य प्रजाति इस ढंग से वि ोशीकृत नहीं होती है क्योंकि उनके पास बाज़ार अर्थव्यवस्था नहीं होती है। यह बाज़ार अर्थव्यवस्था सिर्फ हम मनुश्यों की व्यापार करने की वि ोश योग्यता का ही परिणाम है। इसी प्रकार धन पैदा किया जाता है।

अतः आर्थिक रूप से मनुश्यों को कभी भी स्व–पर्याप्ती (self–sufficient) होने की सलाह नहीं दी जानी चाहिए। ज़रा सोचिए कि यदि आपने नि चय किया कि आप सभी कार्य अपने आप करेंगे तथा सेवाओं व वस्तुओं का आदान–प्रदान नहीं करेंगे, तो क्या होगा? सोचिए! यदि आपका परिवार, फिर आपका गाँव या भाहर सभी स्व–पर्याप्ती हो जायें? इसका अर्थ यह होगा कि आपको न केवल अपना भोजन पैदा करने एवं कपड़े धोने के लिए बाध्य होना पड़ेगा वरन् आपको अपना मकान बनाना, सर्जरी या ऑपरे ान करना आदि भी सीखना पड़ेगा। इस प्रकार स्व–पर्याप्तता (self-sufficiency) कभी भी जीवन स्तर को ऊपर नहीं उठाती। इसका कुल परिणाम यही होता है कि आपकी उत्पादन ऊर्जा आपके वि ोश योग्यता वाले क्षेत्रों से हटकर ऐसी जगहों व कार्यों पर बर्बाद होना भाुरू होती है जिनमें आपको महारत नहीं होती।

यदि इस प्रकार की स्व–पर्याप्तता एक व्यक्ति, परिवार, एक गाँव, एक कस्बे के लिए नुकसानदेह है, तो नि चत ही भारत जैसा एक महान दे ा भी इस रास्ते को अपनाकर फायदे में नहीं रह सकता।

स्व–पर्याप्तता एक प्रकार की आर्थिक आत्महत्या (economic suicide) है।

स्व–पर्याप्तता को समझने के लिए एक छोटा–सा प्रयोग करें – बच्चों की एक कक्षा में जाइये और उनसे पूछिए कि वे बड़े होकर क्या बनना चाहते हैं? वे जवाब देंगे – एक्टर, डान्सर, सिपाही, डॉक्टर आदि। मैं भार्त लगा सकता हूँ कि उनमें से कोई भी यह नहीं कहेगा कि मैं बड़ा होकर स्व–पर्याप्ती बनूँगा

---

[1] स्वयं में ही पूर्ण होना अर्थात् अपने सभी कार्य जैसे – अपना भोजन पकाना, मकान बनाना, बाल बनाना, अपना ऑपरे ान करना, यानि, सब कुछ स्वयं ही करना। अपने किसी भी कार्य के लिए किसी अन्य पर निर्भर न होना।

(अर्थात् स्वयं को इस रूप में विकसित करूँगा कि सारे कार्य स्वयं कर सकूँ, किसी पर निर्भर न रहना पड़े)। यदि स्व–पर्याप्तता छोटे बच्चों के तर्कों से विरोधी है तो यह पूरे दे ा के लिए कैसे तार्किक हो सकती है?

जब हम बाज़ार–अर्थव्यवस्था को वि ोशीकृत करते हैं तो एक प्रक्रिया भाुरू होती है, जिसे अर्थ ाास्त्री ''श्रम विभाजन'' (division of labour) कहते हैं।

अर्थशास्त्र श्रम विभाजन द्वारा धन की उत्पत्ति का अध्ययन है।[2]

अनेक वि ोश योग्यताओं वाली भूमिकाओं के बीच श्रम विभाजन भाहरी क्षेत्रों में ही सर्वाधिक उपयुक्त रूप से संभव है। एक गाँव में जहाँ बहुत कम लोग होते हैं, वहाँ श्रम विभाजन अत्यन्त दुश्कर कार्य है। यही वजह है कि गाँव में सफल सर्जन, यहाँ तक कि सफल धोबी[3] होने की गुजांइ ा भी कम ही होती है।

इसीलिए नक ो पर दिखने वाला प्रत्येक बिन्दु (कोई भाहर या कस्बा) घनी आबादी वाला होता है और समृद्ध होता है। किसी भी भाहर या कस्बे (जहाँ अपेक्षाकृत जनसंख्या ज्यादा होती है) में कम जनसंख्या वाले गाँव के मुकाबले अधिक सम्पन्नता होती है क्योंकि वहाँ श्रम विभाजन अधिक होता है। श्रम विभाजन की सीमा व मात्रा बाज़ार के आकार पर निर्भर करती है। बाज़ार जितना व्यापक होता है, श्रम विभाजन उतना ही ज्यादा होता है। उदाहरण के लिए – यदि आप एक चाइनीज भोजनालय खोलना चाहते हैं और चाहते हैं कि प्रतिदिन कम से कम 100 ग्राहक आएं, और यदि 100 में एक व्यक्ति किसी दिन चाइनीज भोजन करना चाहता है तो अपने 100 ग्राहक प्रतिदिन की आव यकता पूर्ति के लिए आपको ऐसे कस्बे या ाहर की आव यकता होगी जहाँ कम से कम दस हजार संभावित ग्राहक हों। यही कारण है कि भीड़ भरे, ज्यादा जनसंख्या वाले भाहर समृद्ध हैं – क्योंकि वहाँ श्रम का विभाजन ज्यादा होता है। यह एक भााभवत प्रक्रिया है – केवल दिल्ली या मुम्बई ही नहीं, वरन् लंदन, टोकियो, न्यूयार्क एवं पेरिस आदि सभी घनी जनसंख्या युक्त है एवं समृद्ध हैं।

संसार का लगभग 50 प्रति ात भाहरीकरण हो चुका है – अर्थात् वि व की 50 प्रति ात जनसंख्या भाहरों एवं कस्बों में निवास करती है। भारत वि व के इस औसत प्रति ात से काफी नीचे, मात्र 30 प्रति ात पर है। परन्तु भारत के

---

[2] यह बाद में स्पश्ट किया जाएगा कि श्रम विभाजन के परिणामस्वरूप ज्ञान का विभाजन भी हो जाता है।

[3] भारत में मौजूद विभिन्न जाति इसी बात को प्रमाणित करती है कि भारत एक नागरिक (ाहरी) सभ्यता है, और थी। स्व–पर्याप्त गाँवों वाला ग्रामीण संसार श्रम विभाजन और कार्य वि ोशज्ञता पर आधारित ऐसी जाति व्यवस्था को पैदा नहीं कर सकता था।

समृद्धतम राज्य, गुजरात एवं महाराश्ट्र में भाहरीकरण का औसत वि व के औसत 50 प्रति ात के आस–पास है जबकि भारत के सबसे गरीब राज्य जैसे– असम एवं बिहार में भाहरीकरण का औसत 10 प्रति ात से भी कम है।

यहाँ यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि *सभ्यता* (civilization) भाब्द लैटिन भाशा के भाब्द सिविटास (civitas) से लिया गया है, जिसका अर्थ ' ाहर' (city) होता है। सभ्यता की कहानी, मध्य सागर के चारों ओर बसे हुए तथा एक दूसरे के साथ वस्तुओं और सेवाओं के आदान–प्रदान अर्थात् व्यापार करने वाले बड़े भाहरों के निर्माण की ही कहानी है। मोहन–ज़ो–दाड़ो एवं हड़प्पा भी, लोथल बन्दरगाह द्वारा, मध्य सागर से जुड़े हुए महान भाहर थे। इस छोटे और सुरक्षित सागर ने परिवहन की सुविधा दी, जिससे व्यापार को बढ़ावा मिला। भाहर एवं कस्बे मानव उपनिवे ाकों की बाँबी हैं। भाहर को बर्बाद कर विकास का कोई भी प्रयास निरर्थक है।

सम्पूर्ण वि व में भाहरीकरण, श्रम विभाजन की सहायता से, समृद्धि बढ़ाता है। इसलिए भारत जैसे दे ाों में भाहरीकरण को सम्पन्नता बढ़ाने के साध ान के रूप में अपनाना , सरकार के पिछले 50 वर्शों के प्रयासों (ग्रामीण विकास के नाम पर निरर्थक धन का व्यय) की अपेक्षा बेहतर विकल्प है। अभी हाल ही के आर्थर एण्डरसन फॉर्चून के वि वव्यापी सर्वे में भारत के भाहरों को सबसे खस्ताहाल स्थिति में पाया गया। नि चत ही सम्पन्न दे ा होने का यह तरीका नहीं है।

ाहरी क्षेत्र संपन्न हैं क्योंकि जनसंख्या सम्पन्नता का कारण है।

सामान्य कुप्र ाासन के अलावा, सड़कों की बदतर स्थिति भी हमारे नगरीय क्षेत्र की बर्बादी का एक प्रमुख कारण है। इस मुद्दे पर हम बाद के अध्यायों में विस्तार पूर्वक चर्चा करेंगे। अभी के लिए यह समझें कि हमारे यहां की एस.टी.डी. कोड की पुस्तक में 400 से अधिक नाम हैं (अर्थात् इतने सारे भाहर हैं)। परन्तु भाहरी जनसंख्या का अधिकां ा (एक अनुमान के मुताबिक 62.5%) केवल कुछ मुट्ठीभर वि ााल महानगरों में केन्द्रित है, जो कि प्रतिदिन और बढ़ रहा है। भाहरी भूगोल भाास्त्री (जो भाहरों एवं कस्बों के भूगोल का अध्ययन करते हैं), इस प्रक्रिया को आधिपत्य (Primacy) कहते हैं। आधिपत्य तब होता है जब मुख्य भाहर अपने आस–पास के कस्बों से सही प्रकार से जुड़ा नहीं होता तथा स्वयं भरता जाता है। यदि सड़कें अच्छी होती तो उपनगरों (सैटेलाइट कस्बे) का विकास होता और केवल कुछ गिने चुने महानगरों पर पड़ने वाला

अत्यधिक दबाव कम होता और एस.टी.डी. कोड की किताब का प्रत्येक नाम एक छोटा सिंगापुर होता।

अंग्रेजों ने अपने समय में भारत में कई बढ़िया भाहर व असंख्य 'हिल स्टे ान' बनाए। पिछले पचास वर्शों में हमारे सभी भाहरी क्षेत्र बर्बाद हो चुके हैं। ब्रिटि ा कालीन भारत में सभी हिल स्टे ान किसी न किसी महानगर से जुड़े थे। यथा – दार्जिलिंग–ि ालांग का क्षेत्र कोलकाता से, पूना–महाबले वर का क्षेत्र मुम्बई से, ऊटी–कुनूर का क्षेत्र चेन्नई से तथा ि ामला–मसूरी का क्षेत्र दिल्ली से जुड़ा है। इसी तरह से यदि हमारे भाहरी क्षेत्र महानगरों से जुड़ जायें तो वे सभी सिंगापुर की तरह हो सकते हैं। ध्यान रहे, सिंगापुर 1965 में ही आजाद हुआ और कुलियों तथा फेरी वालों की भीड़ से भरे छोटे से गन्दे भाहर से आज उभरता हुआ विकसित भाहर बन गया है।

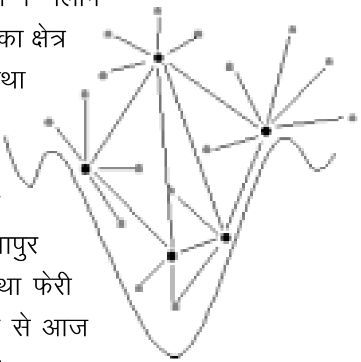

सड़कों की बदतर स्थिति के कारण भारत के भाहरों में ज़रूरत से ज्यादा भीड़ है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि दे ा में आव यकता से अधिक जनसंख्या है। कभी ट्रेन या हवाई जहाज से यात्रा करें तो आप पायेंगे कि भारत में वि ााल खुले मैदान हैं। जापान, जर्मनी, हालैण्ड एवं बेल्जियम का जनसंख्या घनत्त्व (प्रति वर्ग किलोमीटर में व्यक्तियों की संख्या) भारत के जनसंख्या घनत्त्व से अधिक है फिर भी इन दे ाों के भाहरों में अत्यधिक भीड़ की समस्या नहीं है। भाहरों में बढ़ती अत्यधिक भीड़ को रोकने का उपाय परिवार नियंत्रण नहीं है, वरन् वे सड़कें हैं जो बहुत सारे कस्बों को मुख्य भाहर से जोड़ेंगीं। बहुत सारे भाहरी क्षेत्र अर्थात् 400 सिंगापुर होने से भारतीयों के पास आव यकतानुरूप रहने के लिए स्थान होगा तथा अत्यधिक भीड़ की समस्या समाप्त होगी।

इसलिए यह तर्क दृश्टिकोणों में द्वन्द (मतभेद) पैदा करता है। हजारों *स्व ाासित* व *स्व–पर्याप्त* ग्रामीण संघों (गाँधी व नेहरू का दृश्टिकोण) के रूप में भारत का भविश्य देखने की अपेक्षा हम भारत को एक भाहरी सभ्यता के रूप में देख सकते हैं। ऐसे 400 बढ़िया भाहरों के मध्य, जो कि सड़क, रेल या वायुमार्ग द्वारा भली प्रकार जुड़े हों, सर्वाधिक व्यापार सबसे कम कीमत पर सम्पन्न हो सकता है। घटिया परिवहन व्यवस्था व्यापार को मँहगा व धीमा बनाती है। एक

ट्रक एक दिन में भारतीय राजमार्गों पर लगभग 250 किमी चलता है जबकि भोश संसार में 600 किमी. से अधिक चलता है।

ऐसा कहा जाता है कि ''प्रत्येक बड़ा ाहर अपने परिवहन तंत्र पर विशाल मकड़ी की तरह बैठा होता है।'' भारत को भी ऐसे भाहरों एवं कस्बों की आव यकता है।

चूँकि मानव मात्र ही आर्थिक गतिविधियाँ सम्पन्न कर सकते हैं और चूँकि ाहर समृद्ध होते हैं अतः ऐसा कहा जाना चाहिए कि ''जनसंख्या को गरीबी का कारण बताने वाला सिद्धान्त'' ैतान का दर्शन है।

यह द ान माता–पिता को बच्चे पैदा करने के कारण भार्मिन्दा करता है। यह द ान बच्चों में यह भावना पैदा करता है कि वे संसाधन नहीं हैं वरन् समस्या हैं। यह द ान मार्ग–दुर्घटनाओं के आँकड़ों पर मानवद्वेशी नजर रखता है और कहता है कि हमारी असुरक्षित सड़कें बढ़ती जनसंख्या की समस्या का एक समाधान हैं।

मानव दुनिया के सर्वोत्तम संसाधन हैं क्योंकि उनके पास सोचने के लिए मानव मस्तिश्क है। आप उसी मस्तिश्क में ज्ञान उड़ेलने का अर्थात् खुराक देने का प्रयास कर रहे हैं। अतः कृपया यह नि चत कर लें कि जो भी खुराक आप मस्तिश्क को दें वह सत्य पर आधारित हो। असत्य द ान आपके मस्तिश्क को मृत कर देगा तथा फिर आपको यह नहीं सोचने देगा कि आप अपने दिमाग के प्रयोग व व्यापार करने की योग्यता से, मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था में अपना सर्वोत्तम कार्य करते हुए धन पैदा कर सकते हैं, बल्कि यह आपको इस प्रकार सोचने के लिए प्रि ाक्षित करेगा कि आप एवं आपके भाई–बन्धु ही विकराल समस्या हैं, जिनके समाधान के लिए आपको राजनीतिक कार्यवाही की आव यकता है।

''क्यों बाज़ार की अर्थव्यवस्था में राजनैतिक हस्तक्षेप हमारे लिए और हमारे दे ा के लिए अत्यन्त नुकसानदेह है?'' यह जानने के लिए आइये अगले अध्याय ''राजनैतिक बाज़ार'' की ओर चलें।

ज़रा सोचिये

- अपने भाहर की गतिविधियों पर दृश्टि डालें व श्रम विभाजन का कोई कृत्य तला ों। सोचें कि क्या वह कार्य एक विरल आबादी वाले गाँव में लाभदायक ढंग से किया जा सकता है? (उदाहरण के लिए कान की बीमारियों के लिए एक संस्थान)
- अपने आस–पास कुछ ऐसे गरीब लोग तला ों जो भाहर में श्रम–विभाजन की प्रक्रिया में भाग लेकर अपनी जीविका चलाते हों (जैसे – धोबी)। सोचें! क्या यह व्यक्ति गाँव में बेहतर तरीके से रह पाता? उससे भी पूछें।

3

राजनैतिक बाजारों की विफलता

कल्पना कीजिए कि आप अपने भाहर के बाज़ार में हैं। वहाँ सभी प्रकार की वस्तुओं और खाने–पीने की बहुत सी दुकानें हैं और आपकी जेब में नि चत रकम है। आप सभी कुछ नहीं खरीद सकते क्योंकि संसाधन सीमित हैं और इच्छाएं असीमित। आपको यह निर्धारित करना होगा कि आप अपनी नि चत ध नरा ा को – आइसक्रीम या चॉकलेट में से – किस पर खर्च करना चाहते हैं? आपको आइसक्रीम या चॉकलेट में से एक का **चयन** करना होगा।

'चयन' **(choice)** अर्थशास्त्र की केन्द्रीय समस्या है।

असीमित इच्छाओं को सीमित संसाधनों द्वारा पूरित करने हेतु हमें संसाध नों को प्रयुक्त करने के लिए चयन करने की आव यकता होती है। हम दो प्रकार के चयन करते हैं– 1. निजी या व्यक्तिगत चयन 2. तथा सार्वजनिक चयन।

व्यक्तिगत चयन निजी बाज़ार में किया जाता है तथा यहाँ दो पक्ष 'उपभोक्ता' व 'उत्पादक' होते हैं। इसी प्रकार के चयन से हम स्वयं के लिए भोजन, कपड़े, खिलौने, संगीत, किताबें या अन्य कोई इच्छित वस्तु खरीदते हैं।

सार्वजनिक चयन से तात्पर्य उस चयन से है जो राजनैतिक बाजार में किया जाता है तथा इस बाज़ार में मुख्य पात्र राजनेता, नौकरशाह, विशे ा

रुचि वाले समूह **(special interest groups)** तथा मतदाता **(voters)** होते हैं। इस प्रकार के चयन से हम सड़कें, सफाई–व्यवस्था, पुलिस, राश्ट्रीय सुरक्षा आदि पाते हैं। ध्यान रहे, राजनैतिक बाज़ार में भी संसाधन सीमित होते हैं। अतः यदि हम एक मद पर अधिक व्यय करते हैं तो दूसरे के लिए कम बचता है। जैसे, यदि हम सुरक्षा पर ज़्यादा खर्च करेंगे तो ि ाक्षा पर खर्च करने के लिए कम संसाधन बचेंगे।

अर्थ ाास्त्र की वह भााखा जो ''राजनैतिक बाज़ार (उदारीकृत व लोकतान्त्रिक व्यवस्था) में चयन प्रक्रिया'' के सम्पन्न होने की विधा की विवेचना करती है, सार्वजनिक चयन सिद्धान्त (Public Choice Theory) कहलाती है।

उपभोक्ता अपना धन निजी बाज़ार में खर्च कर विभिन्न विकल्पों के बीच से चयन करते हैं। चूँकि अपने चयन से वे सीधे प्रभावित होते हैं तथा गलत चयन करने पर नुकसान झेलते हैं, अतः वे सूचना (जानकारी) एकत्रित करने में एवं पिछली गलतियों को सुधारने में खासी सर्तकता बरतते हैं। यदि आप किसी ब्राण्ड का म्यूज़िक प्लेयर खरीदते हैं और वह खराब निकलता है तो फिर आप उस ब्राण्ड को पुनः नहीं खरीदेंगे। इस प्रकार निजी बाज़ार में अधिकां ातः धन भली प्रकार खर्च होता है। यदि समाज के धन को खर्च करने के अधिकां ा निर्णय भी निजी बाज़ार के द्वारा लिए जाएँ, तो धन भली प्रकार खर्च होगा।

राजनैतिक बाज़ार में, सबसे अच्छी लोकतान्त्रिक व्यवस्था तथा कर्मचारियों के होने पर भी, निम्न कारणों से धन भली प्रकार खर्च नहीं हो पाता :

● राजनेताओं का प्राथमिक ध्यान आने वाले अगले चुनावों पर होता है। अतः वे सार्वजनिक धन को इस प्रकार से खर्च करेंगे जिससे उनके वोट नि ि चत हो जाएं। आन्ध्र प्रदे ा में 'दो रुपये प्रति किलोग्राम चावल' योजना इसी का उदाहरण है। इसी के अन्य उदाहरणों में किसानों को 'निः ाुल्क पानी व निः ाुल्क बिजली देना भी हैं ।

● नौकर ााहों का प्राथमिक ध्यान बजट पर केन्द्रित होता है। वे हमे ाा यह सुनि ि चत करने का प्रयास करते हैं कि उनका विभाग राजस्व व कर द्वारा ज्यादा से ज्यादा आय करे। बजट का घाटा – जो यह बताता है कि सरकार अमुक विभाग द्वारा इकट्ठे किये राजस्व से कितना ज्यादा उस विभाग पर खर्च करती है – कभी कम नहीं होता, क्योंकि अफसर–भााही विभाग प्रत्येक स्तर पर अधिक से अधिक खर्च करना चाहते हैं।

वि ोश रुचि वाले समूह व मतदाता निः ुल्क हिस्सा प्रणाली (दलाली) में ही रुचि रखते हैं – अर्थात दूसरों के धन की कीमत पर स्वयं को लाभ। वे ऐसे उपायों की तला ा करेंगे जिससे सार्वजनिक धन उन पर खर्च हो। उन्हें बिना खर्च किये कुछ मिल जाये और कीमत उन अन्य करदाताओं को चुकानी पड़े जो राजनैतिक रूप से संगठित नहीं है। इसका एक अच्छा उदाहरण *उच्च आयात भुल्क* है जो भारतीय उद्योगपतियों की रक्षा करता है। उद्योगपति कम हैं परन्तु संगठित व मुखर हैं। उपभोक्ता ज़्यादा है परन्तु असंगठित है और भुल्क अदा करते हैं।

यहाँ यह भी ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि राजनैतिक व्यय बहुसंख्यों के लिए नहीं किया जाता वरन् यह उन लघु मुखर समूहों के लिए होता है जो राजनैतिक रूप से संगठित होते हैं। राजनेता इन लघु समूहों के ऊपर व्यय करते हैं जबकि बड़े समूह कीमत अदा करते हैं। संयुक्त राश्ट्र में कृशि पर मिलने वाली छूट इसका उदाहरण है – यह छूट जनसंख्या के उन 2 प्रति ात किसानों को दी जाती है जो संगठित हैं जबकि कीमत उस भोश 98 प्रति ात जनसंख्या से ली जाती है, जो किसानों की तरह संगठित नहीं है।

इसका एक दूसरा उदाहरण संयुक्त राश्ट्र में ही स्टील पर थोपा गया उच्च आयात भुल्क है – यह भुल्क थोड़े से गैर–प्रतियोगी अमेरिकन स्टील उत्पादकों को लाभ पहुँचाता है जबकि करोड़ों अमेरिकन स्टील उपभोक्ता इसके लिए अदा करते हैं।

अतः सबसे अच्छा है कि निजी बाज़ारों व राजनैतिक बाज़ारों में धन व्यय करने के तरीकों के अन्तर को निम्न प्रकार जाँचा जाए –

फ्रीडमन के ''व्यय के नियम''[5] :

धन को खर्च करने अर्थात् व्यय करने के चार तरीके हैं –

- आप अपना धन अपने ऊपर व्यय कर सकते हैं।
- आप अपना धन दूसरों के ऊपर व्यय कर सकते हैं। जैसे – उपहार

---

[5] मिल्टन फ्रीडमन (अर्थ ाास्त्र में नोबल पुरस्कार प्राप्त) मुक्त बाजार के सबसे बड़े समर्थक हैं। (उनकी पुस्तक फ्री टू चूज पढ़ें)

इत्यादि खरीदकर।

● आप दूसरों का धन अपने ऊपर व्यय कर सकते हैं। जैसे – 'कम्पनी के खाते से' वस्तुएं खरीद कर ।

● आप दूसरों का धन अन्य दूसरे लोगों पर व्यय कर सकते हैं। जैसे – राजनैतिक व्यय (केन्द्रीय आर्थिक नियोजन)।

आर्थिक नियोजन में दूसरे का धन अन्य दूसरे लोगों पर खर्च किया जाता है। इस तरीके में धन का अपव्यय निश्चित है।

यह वर्गीकरण इस बात पर आधारित है कि लोगों द्वारा अपना धन खर्च करने के लिए स्वयं पर सर्वाधिक भरोसा करना समाज के लिए अच्छा होता है क्योंकि ऐसी स्थिति में समाज का धन भली प्रकार खर्च होता है। जबकि यदि लोग धन व्यय करने के लिए राज्य के तरीकों पर भरोसा करते हैं अर्थात् आर्थिक नियोजन पर भरोसा करते हैं तो यह अच्छा नहीं होता है क्योंकि अधिकां ा धन भली प्रकार खर्च नहीं किया जाता है।

आर्थिक नियोजन के तहत कुछ लोग, दूसरे लोगों का धन, कुछ अन्य दूसरों लोग पर व्यय करते हैं। इस तरीके में धन का अपव्यय नि चत है।

निजी व्यय, राजनैतिक व्यय की अपेक्षा निम्न तीन कारणों (अंग्रेजी के आई **(I)** से भुारू होने वाले तीन कारण) से ज़्यादा बेहतर है –

- इन्टरेस्ट (interest) (रुचि)
- इनसेन्टिव (incentive) (प्रेरक)
- इनफॉरमे ान (information) (सूचना)

उपभोक्ताओं को धन बुद्धिमानी पूर्वक व्यय करने में रुचि (interest) होती है एवं इसके लिए उनके पास प्रेरक (incentive) भी होते हैं। अतः वे उपयुक्त सूचनाएं (information) भी जुटाते हैं। जबकि राजनैतिक बाजार के लोगों के पास ये कुछ भी नहीं होता। वस्तुतः उनका फायदा इसी में है कि वे धन का बेवकूफी से व्यय करें।

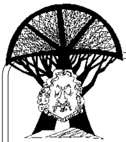

ज़रा सोचिये

- ❖ किसी मतदाता के पास अपना मत देने से पहले सभी सम्बन्धित सूचनाएं जानने के लिए क्या प्रेरक (incentive) होते हैं?
- ❖ क्या ये प्रेरक (incentive) काफी होते हैं अर्थात् क्या प्रत्येक मतदाता द्वारा प्रत्येक उम्मीदवार एवं उसके घोशणा पत्र के बारे में विस्तार पूर्वक जानना युक्तिसंगत है? क्या अधिकां ा मतदाता ऐसा करते हैं?
- ❖ यदि अधिकां ा मतदाता ऐसा नहीं करते, तो फिर लोकतांत्रिक तरीके से चुनी गई सरकार पर भी कितना भरोसा किया जा सकता है?

4

सार्वजनिक सम्पत्ति एवं बाज़ार की विफलता

मुक्त बाज़ार एवं उद्यम ीलता (entrepreneurship) पर ज़ोर देने वाले, अर्थ ास्त्र के संस्थापित सिद्धान्त (clasical theory) में इस तथ्य को स्वीकारा गया कि कुछ वस्तुएं ऐसी हैं जिन्हें व्यापारी उपलब्ध नहीं करा सकते। अतः ऐसी वस्तुओं को सामूहिक संग्रह अर्थात् सरकारी राजस्व द्वारा उपलब्ध कराने की आव यकता समझी गई। ऐसी वस्तुओं को, जिनकी आपूर्ति में निजी बाज़ार सहभागी नहीं होते सार्वजनिक सम्पत्ति (public goods) के नाम से जाना जाता है।

सार्वजनिक सम्पत्ति वह सम्पत्ति या सामग्री है जिसे न खरीदा जा सकता है और न बेचा जा सकता है क्योंकि जो भी लोग इन सेवाओं या वस्तुओं का प्रयोग करना चाहते हैं, उनके लिए इनकी सेवाएं निः ुल्क उपलब्ध होती हैं। उदाहरण के लिए सड़क या पुलिस सेवा। प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए घर तो बनावायेगा परन्तु कोई भी घरों को जोड़ने वाली सड़क का व्यक्तिगत रूप से निर्माण तब तक नहीं करायेगा जब तक कि वह प्रत्येक प्रयोग कर्ता से कीमत न वसूल सके और आम तौर पर यह संभव नहीं है।

प्रका ा स्तम्भों को सरकार द्वारा आपूर्ति की जाने वाली सार्वजनिक सम्पत्तियों की सूची में भाामिल किया गया क्योंकि कोई भी निजी व्यापारी इन प्रका ा स्तम्भों का निर्माण नहीं करायेगा क्योंकि वह इनकी रो ानी प्रयोग करने (देखने) वाले जहाजों से इसकी कीमत नहीं वसूल कर सकता। यही कथन हमारे भाहर की सड़कों की प्रका ा व्यवस्था (स्ट्रीट लाइट) के लिए भी सत्य है।

कर से प्राप्त धन को सार्वजनिक सम्पत्तियों पर खर्च करना समझदारी है क्योंकि तब हम अपने उपभोग के सम्पूर्ण योग को बढ़ा सकेंगे। हम अपने घरों में उन सभी सुख–सुविधाओं के साथ रहते हैं जिन्हें हम वहन कर सकते हैं अर्थात् *निजी सम्पत्तियाँ* । यदि हमारे पास ज्यादा सार्वजनिक सम्पत्तियाँ होगी अर्थात् बेहतर व चौड़ी सड़कें व अच्छी पुलिस सेवा, तो हम ज़्यादा सुरक्षित महसूस करेंगे व ज़्यादा बेहतर स्थिति में रहेंगे।

अतः सार्वजनिक धन के निजी सामग्रियों यथा – कार, स्टील, होटल आदि पर खर्च करने पर प्र न उठाना आव यक है। ये सभी निजी सामग्रियाँ हैं क्योंकि ये सभी निजी व्यवसायियों द्वारा उत्पादित की जा सकती हैं और उपलब्ध करायी जा सकती हैं।

कर–राजस्व से प्राप्त सीमित धन को होटल बनाने या इस्पात संयत्र (Steel plants) लगाने में, खर्च करने की हमें कोई आव यकता नहीं है। समाजवादियों ने सार्वजनिक धन को, अत्यधिक घाटे वाले सार्वजनिक प्रतिश्ठानों में निवे ात कर दिया है। वे कार बनाते हैं परन्तु सड़कें नहीं बनाते।

भारत सड़कों (एक सार्वजनिक सम्पत्ति) की कम आपूर्ति से त्रस्त है। जैसा पहले भी कहा जा चुका है कि सड़कों की आपूर्ति की यह कमी आधिपत्य (Primacy) की समस्या को जन्म देती है और भाहरी क्षेत्रों के विकास को अवरुद्ध करती है। अब हम हमारी समाजवादी सरकार, जो कि तथाकथित तौर पर अर्थव्यवस्था को नियोजित करती है, की तार्किकता पर चर्चा करते हैं। भारत का प्रत्येक प्रधानमन्त्री योजना आयोग का अध्यक्ष होता है। इसकी तार्किकता क्या है?

तार्किकता एवं राजनैतिक अर्थव्यवस्था **(Rationality and Political Economy)**

अर्थ ाास्त्र में यह माना जाता है कि सभी मनुश्य तार्किक होते हैं अर्थात् वे हानि की अपेक्षा लाभ पसन्द करते हैं तथा तार्किक रूप से स्व–हित के लिए प्रयासरत रहते हैं।

राजनीति विज्ञान में अधिकाँ ातः गलत रुप से यह माना जाता है कि राजनैतिक बाज़ार के सभी अभिनेता अर्थात् राजनेता एवं नौकर ाह, निस्वार्थ भाव से जनहित के लिए प्रयासरत रहते हैं।

राजनैतिक अर्थ ास्त्र (political economy) या *लोक–चयन सिद्धान्त* (public choice theory) वह सिद्धान्त है जो अर्थ ास्त्र को राजनीति विज्ञान में भाामिल करता है। अर्थ ास्त्र में हम यह मानते हैं कि बाजार में मौजूद सभी पक्ष (व्यक्ति) तार्किक हैं तथा स्वहित (self-interest) के लिए प्रयासरत हैं। यदि हम इस मान्यता को राजनीति विज्ञान में प्रयुक्त करें और मान लें कि राजनैतिक बाजार के सभी पक्ष (व्यक्ति) भी स्व–हित के लिए कार्य कर रहे हैं, तो क्या होगा? परिणाम प्रद ित करते हैं कि–

- राजनीतिज्ञ पुनर्मतदान के लिए प्रयासरत रहते हैं।
- नौकर ाह बजट के बढ़ाने हेतु प्रयासरत रहते हैं।
- और मतदाता तथा वि ोश रुचि वाले समूह (voters and special interest groups) निः ुल्क हिस्से (दलाली) प्राप्त करने हेतु प्रयासरत रहते हैं।

यहाँ यह मतलब बिल्कुल भी नहीं है कि वे सभी भ्रश्ट हैं। लोक चयन सिद्धान्त केवल यह मानता है कि वे सभी स्व–हित में कार्य करेंगे और इस आध ाार पर पूर्व–कथन (prediction) करने का प्रयास करता है। यदि, मानव व्यवहार के ये पूर्व कथन राजनैतिक बाज़ार में सही सिद्ध होते हैं तो इसका मतलब है कि सिद्धान्त सही है। यहाँ यह मतलब भी नहीं है कि मनुश्यों को हमे ाा स्वार्थी होना चाहिए। यह एक मान्यता (assumption) है न कि स्वार्थी होने की सलाह (prescription)।

यदि हमारी नियोजित अर्थव्यवस्था ऐसी नीतियों के लिए प्रयासरत हो जिनसे अधिकतम राजस्व का लाभ हो तो इसे तर्कसंगत कहा जा सकता है। क्या हमारी सरकार सार्वजनिक धन को इस प्रकार निवे ाित करती है कि इससे राजस्व में वृद्धि हो? दूसरे भाब्दों में क्या हमारे प्रधानमन्त्री हमारे धन को इस प्रकार निवे ाित करते हैं कि कर द्वारा ज्यादा से ज्यादा कमाया जा सके?

यहाँ अफगान सिपाही भोर ाह सूरी, जिसने भारत को तलवार के बल पर जीता, को याद करना प्रासंगिक है, क्योंकि उसने इसी मं ाा से भाासन किया कि अधिकतम संभव कर व राजस्व वसूल सके। उसने सड़कें व सराय बनवाईं

(जी.टी.रोड उसी के द्वारा बनवाई गई) ताकि इनसे व्यापार को प्रोत्साहन मिल सके और वह व्यापारियों से कर वसूल सके।

हमारे समाजवादी प्रधानमन्त्री ने कभी भी यह भरोसा नहीं किया कि सभी लोग व्यापार कर सकते हैं या फिर यों कह सकते हैं कि उनके हिसाब से सभी लोग व्यापार करने में सक्षम नहीं हैं। बजाय प्रोत्साहन के उन्होंने व्यापार को प्रतिबंधित किया ताकि औद्योगिकीकरण को बढ़ावा दिया जा सके। इसे, आजकल की व्यवस्था में अंतरग–मित्रवाद (cronyism) कहते हैं। यह एक ऐसी राजनैतिक अर्थव्यवस्था है जिसमें कुछ गिने चुने (राजनैतिक रूप से चुने हुए) व्यवसायी आन्तरिक बाज़ार पर कब्जा कर लेते हैं और सरकार की ताकत की मदद से, बाहरी प्रतियोगी ताकतों को दूर रखते हैं।

> सरकार ने सार्वजनिक धन का निवेश निजी संपत्तियों में किया है। .... वे इसे मिश्रित (mixed) अर्थव्यवस्था कहते हैं। यह सचमुच एक मिश्रित (घाल–मेल वाली) (mixed-up) अर्थव्यवस्था है।

सरकार ने सार्वजनिक धन को निजी सम्पत्तियों में निवे ा किया है। उन्होंने कर से प्राप्त धन को कार बनाने में निवेि ात किया है। उन्होंने सड़कों के निर्माण में धन निवेि ात नहीं किया है और न ही निजी व्यापारियों को कार बेचने की अनुमति दी है। वे इसे मिश्रित अर्थव्यवस्था (mixed economy) कहते हैं। वास्तव में यह मिश्रित (घालमेल वाली) अर्थव्यवस्था (mixed –up economy) है। और यह बिल्कुल निरर्थक है।

समाजवादी तार्किक नहीं हैं। जिस तरीके से हम सार्वजनिक धन को निवेि ात करते हैं, उसे बदलने की आव यकता है। सड़कों को सर्वोच्च वरीयता मिलनी चाहिए क्योंकि वह सार्वजनिक सम्पत्ति हैं। हालाँकि पथ कर (टोल) युक्त राजमार्ग (highway) व तीव्रगामी मार्ग (express ways) इत्यादि निजी सम्पत्ति हो सकते हैं, इसलिए इनमें निजी निवे ा को प्रोत्साहित करना बेहतर होगा। सार्वजनिक धन को भाहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में सर्वोत्तम सड़कें बनाने में लगाने की आव यकता है। इसी से भारत सम्पन्न बनेगा। इस प्रकार दूर–दराज के इलाकों में अलग–अलग पड़े हुए गरीब गाँव भी भाहरी आधुनिकीकरण व प्रभावी अर्थव्यवस्था से जुड जायेंगे। आज इस तथाकथित *ग्रामीण विकास* के पचास वर्शों के बाद भी ग्रामीण भारत, भाहरी भारत से भली प्रकार जुड़ा नहीं है और इसीलिए गरीब है। जैसा कि अरून्धती राय कहती हैं – ***भारत अपने गाँवों में बसता नहीं है वरन् भारत अपने गाँवों में दम तोड़ता है।*** यदि भारत

इस तथाकथित *ग्रामीण विकास* को त्यागकर अन्तर्संयोजन (inter connectivity) अर्थात् विभिन्न क्षेत्रों को आपस में जोड़ने के लक्ष्य को केन्द्र में रखकर, तीव्र भाहरीकरण के लिए प्रयास करे तो विभिन्न भाहर एवं कस्बे विकसित होंगे। इस प्रकार ज्यादा से ज्यादा सड़कें बनेंगी और हम सभी चौड़ी सड़कों के किनारे बड़े मकानों में रह सकेंगे।

ध्यान रहे (और इसे बार–बार दोहराने की आव यकता है) कि जापान, पि चमी जर्मनी, बेल्जियम तथा हॉलैण्ड का जनसंख्या घनत्व (प्रतिवर्ग किलोमीटर में व्यक्तियों की संख्या) भारत से ज्यादा है। परन्तु वहाँ हमारी तरह, भाहरों में आव यकता से अधिक भीड़ की समस्या नहीं है। वहाँ भाहरी सम्पत्ति की कीमतें भी कम हैं। भारत के भाहरों में अत्यधिक भीड़ एवं आसमान छूते दामों की समस्या *जनसंख्या समस्या* के कारण नहीं है, बल्कि यह सड़कों की कमी के कारण है। भारत एक वि ााल दे ा है। कभी रेलगाड़ी या वायुयान से यात्रा करें तो आप मीलों लम्बी खाली जगहें पायेंगे, जहाँ कि कोई मकान नहीं है। इस जगह को मनुश्यों के निवास के लिए विकसित व निर्मित करना चाहिए और इन विकसित स्थानों को परिवहनीय व्यवस्था से जोड़ने का मुख्य साधन सड़कें हैं। जैसे ही हम किसी भाहर ***क*** को गाँव ***ख*** से अच्छी सड़क या ट्राम–वे के द्वारा जोड़ते हैं, तुरन्त ही भाहर के लोगों को रहने के लिए और जगह मिल जाती है। भाहर के मध्य में जमीन की कीमतों में गिरावट आयेगी और ज़्यादातर लोग भाहर से थोड़ा बाहर की ओर आकर बसेंगे तथा वहीं से अपने कार्यों को सम्पादित करेंगे।

इस प्रकार हम गैर–तार्किक (irrational) सरकार से पीड़ित हैं। हमारी समाजवादी सरकार, धन को, बिना वैज्ञानिक सोच के, मूर्खतापूर्ण तरीके से खर्च करती है और यह सरकार की, लोगों के बारे में, गलत सोच का परिणाम है। सरकार मनुश्यों की स्वाभाविक आर्थिक प्रवृत्ति में वि वास नहीं करती ।

परभक्षी सरकारें एवं चोर तंत्र (Predatory States and Kleptocracies)

केवल इतना निश्कर्श निकाल लेना कि समाजवादी राज्य या सरकार गैर – तार्किक है, काफी नहीं है। हमें सरकार के चरित्र को भी समझने की कोि ा ा करनी चाहिए। सरकार द्वारा सेवा करने के पीछे उद्दे य (इरादा) क्या है? भोर ााह सूरी न तो लोकतान्त्रिक ढंग से चुना गया था और न ही उसने नियोजन किया परन्तु फिर भी उसने सरायों और सड़कों में निवे ा किया। उसकी रुचि अधिकाधिक कर वसूलने में थी और वह अपने इस इरादे में सफल भी हुआ।

अर्थव्यवस्था को नियोजित करने वाले और लोकतान्त्रिक तरीके से चुने हुए समाजवादियों ने, एक परभक्षी भोर ाह सूरी जितनी समझदारी भी नहीं दिखाई है। इससे बुरा और क्या हो सकता है?

अनेक राजनैतिक अर्थ ाास्त्री आज परभक्षी सरकारों (predatory states) के सम्प्रत्यय से जूझ रहे हैं। ऐसा देखा गया है कि तीसरी दुनिया के अधिकाँ ा हिस्से में गरीबी इसलिए है, क्योंकि सरकारें बुरी हैं। इन सरकारों को कभी–कभी चोरतंत्र अर्थात् ***चोरों का शासन*** (kleptocracy – the rule of thieves) भी कहा जाता है। जॉर्ज बी.एन. ॲइटे लम्बे समय से अफ्रीका की ''खून चूसने वाली सरकारों (vampire states)" के बारे में लिखते रहे हैं। भारत में प्रधानमन्त्री अटल बिहारी बाजपेयी ने दिल्ली के उपराज्यपाल को लिखे एक पत्र में स्वीकार किया कि दिल्ली में, पुलिस और नगरपालिका वाले, बाज़ार अर्थव्यवस्था के सबसे छोटे खिलाड़ियों – ठेले–रेहड़ी वालों और रिक ो वालों से जबरन अवैध वसूली द्वारा 50 करोड़ रुपये से अधिक प्रतिमाह इकट्ठा करते हैं। चोरतंत्र !

आज यह एक स्वीकृत तथ्य है कि लगातार बढ़ती गरीबी और गिरावट का एक मात्र कारण बुरी सरकार हैं। बुरी सरकारें लोगों को गरीब बनाये रखती हैं। चोर तंत्र क्यों पैदा होता है?

परभक्षी सरकारें, भारत के लिए नई नहीं हैं – जैसा कि हमने अफगानी भोर ाह सूरी के मामले में देखा। भोर ाह सूरी के बाद आये मुगल भी यहाँ अपना राजस्व संग्रह बढ़ाने के लिए थे। परन्तु ये सरकारें तार्किक थीं। इन्होंने सार्वजनिक सम्पत्ति में निवे ा किया। सम्राट अकबर ने पाँच हजार मजदूरों की सहायता से खैबर दर्रे पर सड़क बनवाई ताकि पहिए वाले वाहन आसानी से गुजर सकें। मुगलकालीन भारत में व्यापार व प्रव्रजन मुक्त था। मुगल सम्राट स्वयं को ''जहाँपनाह'' अर्थात् संसार को भारण देने वाले कहते थे। उन्होंने व्यापार पर कर लगाया तथा यदि कोई व्यक्ति पड़ोसी राजा का संरक्षण छोड़कर मुगल साम्राज्य के क्षेत्र में बसना चाहता था तो सम्राट को उसमें कोई आपत्ति नहीं थी क्योंकि अब सम्राट उससे भी कर वसूल सकता था। मुगल सम्राटों ने अप्रवास व आव्रजन को जनसंख्या समस्या के रूप में न लेकर, ऐसे संसाधन के रूप में लिया जो स्वयं के लिए और उसके राज्य के लिए धन पैदा करेगा। मुक्त व्यापार एवं मुक्त अप्रवास के साथ–साथ

> मुक्त व्यापार एवं मुक्त अप्रवास ने परभक्षी तानाशाहों को राजस्व बढ़ाने तथा जनहित करने का अवसर दिया।

सार्वजनिक सम्पत्तियों में सार्वजनिक निवे ा कर इन परभक्षी ताना ाहों ने राजस्व भी बढ़ाया और जनहित भी किया।

पुनः, यह एक राजनैतिक भाासक की आर्थिक तार्किकता का प्र न है। कोई भी भाासक (मान लीजिए किसी छोटे दे ा का कोई राजकुमार) सर्वप्रथम व्यापार को बढ़ावा देकर अपने कर–राजस्व को बढ़ायेगा। तत्प चात् इस राजस्व में से यथा संभव कम मात्रा में लोगों पर खर्च करेगा ताकि भोश को अपने ऊपर महलों इत्यादि के लिए खर्च कर सके। इस प्रकार वह सिर्फ उन वस्तुओं पर खर्च करेगा जिन्हें बाजार उपलब्ध नहीं करा सकता। आप इस प्रकार के तार्किक खर्च के उदाहरण पूरे भारत वर्श में देख सकते हैं। उदाहरण के लिए आपको उत्तर भारत के सभी पुराने बाजारों में घंटाघर (clock – tower) मिल जायेंगे। घंटाघर को सार्वजनिक सम्पत्ति माना गया। इसी प्रकार मुगल सम्राटों ने सार्वजनिक बगीचों एवं अन्य सार्वजनिक सम्पत्तियों में काफी धन निवे ा किया। मसूरी में, आई.ए.एस. अफसरों की प्रि ाक्षण अकादमी को जाने वाले रास्ते पर स्थित ''सार्वजनिक पुस्तकालय'' ब्रिटि ा सरकार द्वारा सार्वजनिक सम्पत्ति पर किये खर्च का एक उदाहरण है।

इसके विपरीत समाजवादी लोकतांत्रिक भारतीय सरकार है जो मुक्त व्यापार को नहीं अपनाती (वरन् यह अंतरंग मित्रवाद को प्राथमिकता देती है), यह मुक्त अप्रवास को नहीं अपनाती (वरन् इसका वि वास है कि अप्रवासी जनसंख्या समस्या का भाग हैं) और यह सार्वजनिक सम्पत्ति में निवे ा नहीं करती। यह अपने सम्पूर्ण कर राजस्व को वेतन बाँटने के रूप में खर्च करती है क्योंकि यह दे ा में सबसे बड़ी रोज़गार–दाता बनना चाहती है। भला कौन तार्किक राजा अपने राज्य के सबसे बड़े रोज़गार दाता के रूप में उभरेगा। याद रहे! एक राजा यह जानता है कि वह धन पैदा नहीं करता बल्कि वह केवल कर वसूलता है और खर्च करता है। इसलिए वह लोगों को स्वतन्त्रता पूर्वक धन पैदा करने की आजादी देगा। समाजवादी सरकार सोचती है कि वह धन पैदा करती है और लोगों को सरकारी नौकरी देकर ही वह उनके लिए सर्वोत्तम कार्य कर सकती है।

समाजवादी लोकतन्त्र निश्चित रूप से चोरतंत्र है : चोरों का ाासन।

- ये चोर–तांत्रिक (kleptocrats) अपने राजनैतिक हितों के लिए, अकु ाल निजी व्यवसायियों की रक्षा करते हैं। जरा कल्पना कीजिए कि आज, जब, बहुराश्ट्रीय कार कम्पनियों की एक बड़ी संख्या हमारे दे ा में प्रवे ा कर चुकी

है, ऐसे में हमारे नेता, पुरानी कारों (सेकेण्ड हैण्ड) के आयात को बंद रखना चाहते हैं। आखिर कब तक हम एक आदमी, उसकी बीबी और दो बच्चों को एक स्कूटर पर मौत को बुलावा देने वाला सफर करते हुए देखेंगे? क्या प्रत्येक भारतीय के पास एक दिन अपनी कार नहीं होनी चाहिए? भारत में इतना वि ाल दो पहिया उद्योग क्यों है? माओ के समय में चीन में वि ाल साइकिल उद्योग था। ये सभी समाजवादी हैं। जापान या सिंगापुर से पुरानी सेकेण्ड हैण्ड टोयोटा मँगानी, बजाज के नये सी.एन.जी. ऑटोरिक ा से सस्ती पड़ेगी और जो प्रदूशण भी कम फैलायेगी? याद रहे, ऑटोरिक ा की वजह से यातायात नियंत्रण गुड़–गोबर हो जाता है फलस्वरूप यातायात धीमी गति से चलता है और ज्यादा –प्रदूशण फैलाता है।

- फिर, नेता सार्वजनिक प्रतिश्ठानों में धन निवे ा करते हैं ताकि उनके चमचों को नौकरियाँ मिलें और वे जनता का धन लूटें। उनकी, राश्ट्र के धन को मुक्त व्यापार (जिस पर कि वे कर लगा सकते हैं) के द्वारा अधिकतम करने में कोई रुचि नहीं है।

यह लूट–खसोट वाला तन्त्र है।

अब हम व्यापार एवं उत्पादन के सम्बन्धों पर चर्चा करने के लिए आगे बढ़ते हैं – यदि व्यापार को मुक्त कर दिया जाय तो भारतीय उद्योगों का क्या होगा?

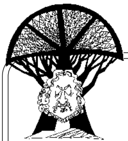

ज़रा सोचिये

सार्वजनिक सम्पत्तियों को दो लक्षणों के आधारों पर परिभाशित किया जाता है – पहला – किसी को भी इनके उपभोग से रोका नहीं जा सकता । दूसरे – जब कुछ लोग इसका उपभोग करते हैं तो दूसरे लोगों के उपभोग के लिए भी यह पर्याप्त मात्रा में मौजूद होती है।
क्या ि ाक्षा एवं स्वास्थ्य–देखभाल सार्वजनिक सामग्रियाँ हैं?

❖ पूर्णतः सार्वजनिक सम्पत्ति कही जा सकने वाली वस्तुओं की एक सूची बनाइये। क्या राश्ट्रीय सुरक्षा, रेडियो प्रसारण, कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर इस सूची में आते हैं?

❖ सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों (PSUs- Public Sector Units) के निजीकरण के बारे में आपके क्या विचार हैं? सार्वजनिक क्षेत्र के समस्त प्रतिश्ठानों के बेचने से प्राप्त धन का क्या करना चाहिए।

5

मुक्त व्यापार

जब तक वि व व्यापार संगठन (World Trade Organisation) ने दबाव बनाकर परिवर्तन के लिए बाध्य नहीं किया तब तक लगभग 50 वर्शों तक भारत ने व्यापार को सीमित रखा। इन पचास वर्शों में हम विदे ा में निर्मित वस्तुओं के विक्रेता या व्यापारी नहीं बन सके। हमारी दुकानों में केवल भारत में बनी वस्तुएं ही संग्रहित होती थीं। अभी भी विदे ी व्यापार पर मुद्रा नियंत्रण व कठोर उच्च आयात भुल्क के रूप में कई नियंत्रण बाकी हैं। इन प्रतिबन्धों को ''स्वदे ी'' के तर्क पर लागू किया जाता है। जिसका तात्पर्य है कि अपनी आव यकता की वस्तुओं का हमें स्वयं निर्माण करना चाहिए। पूर्व के अध्यायों में यह सिद्ध हो चुका है कि मानव के लिए भौतिक रूप से *स्व–पर्याप्तता* (self–sufficiency) आर्थिक रूप से आत्महत्या है। तो क्या एक राश्ट्र के लिए इस प्रकार की *स्व–पर्याप्तता* उचित है?

कल्पना कीजिए यदि मुक्त व्यापार (free trade) होता, मुद्रा का मुक्त मुकाबला होता तथा पूरे वि व से आई चीजें हमारे बाजारों में उपलब्ध होतीं–तो क्या यह सब बातें भारतीय उद्योग को समाप्त कर देतीं या भारत को वास्तविक औद्योगीकरण की ओर लेकर जातीं?

जब वस्तुओं का व्यापार मुक्त रूप से होता है, तो इनमें से बहुत सारी

वस्तुओं के ग्राहक स्थायी हो जाते हैं तथा वे वस्तुएं बाज़ार में अपना स्थान सुरक्षित कर लेती हैं। व्यापारी ऐसी वस्तुओं को दूर–दराज स्थानों से भी लाने में संकोच नहीं करते हैं। ऐसे में निर्माताओं को जल्दी ही लगने लगता है कि भारतीय बाजार काफी बेहतर है तथा परिवहन व्यय को बचाने के लिए ऐसी वस्तुओं का भारत में ही उत्पादन ज्यादा बेहतर विकल्प है।

भारत में निर्माण होने से इन वस्तुओं को कम दामों पर पड़ोसी दे ों जैसे– पाकिस्तान, बांग्लादे ा और नेपाल आदि में भी भेजा जा सकता है।

निर्माण हमेशा व्यापार के पीछे–पीछे चलता है।

व्यापारी बाज़ार पैदा करते हैं तथा निर्माता इन बाज़ारों की आव यकता पूर्ति हेतु इनका अनुसरण करता है।

भारतीय दृश्टिकोण से सबसे अच्छा उदाहरण पूर्वोत्तर क्षेत्र है। यह भारत के सबसे पिछड़े क्षेत्रों में से है। यदि हम इसे विकसित व औद्योगिक क्षेत्र बनाना चाहते हैं तो इस कार्य को करने के लिए हमारे पास दो विकल्प हैं –

1. हम इस क्षेत्र को पूरे वि व से अलग कर दें और वहाँ घरेलू उत्पादन को बढ़ावा दें (*स्व–पर्याप्तता*)। परिणामत : कुछ छोटे उद्योग पैदा होगें।

2. या हम वहाँ की आर्थिक व्यवस्था को अन्तर्राश्ट्रीय बना दें तथा सक्रिय व्यापारिक इकाइयों को वहाँ बाज़ार में सभी वस्तुएं उपलब्ध कराने दें। भीघ्र ही पूर्वोत्तर क्षेत्र में कुछ वस्तुओं की प्राथमिकताएं तय हो जायेंगी (जैसे –नूडल्स) और ये वस्तुएँ वहाँ के बाज़ार में अपना स्थान सुरक्षित कर लेंगी। इस प्रकार इन वस्तुओं के निर्माता इसी क्षेत्र में उत्पादन इकाइयाँ लगाना प्रारम्भ करेंगे। व्यापारी दो–तरफा कार्य करते हैं। उनमें से कुछ पूर्वोत्तर में पैदा होने वाली वस्तुओं के लिए विदे ों में बाजार भी तला ेंगे।

उदारीकृत भारत में इस प्रकार के अनेकों उदाहरण हैं। परन्तु प्रत्यक्ष विपणन कम्पनियाँ (direct marketing companies) जैसे–एमवे, टपरवेयर, ऑरीफ्लेम आदि सम्भवतः इसके सर्वश्रेश्ठ उदाहरण हैं। इस प्रकार की कम्पनियाँ ये मानकर चलती हैं कि प्रत्येक भारतीय एक व्यापारी है। अतः ये कम्पनियाँ उत्पादों को अपने मित्रों तथा साथियों के बीच बेचने के लिए साधारण और सामान्य लोगों का चयन करती हैं। इस प्रकार ये पार्ट टाइम (आं िाक) व्यापारियों का संगठन खड़ा करती हैं। बिना किसी विज्ञापन के, ये बाज़ार में अपना हिस्सा सुनि चत करती है। आज ये सभी कम्पनियाँ भारत में अपना उत्पादन कर रही

हैं। हालाँकि यह संभव है कि ऐसा (भारत में उत्पादन) करने के लिए उन पर सरकार द्वारा दबाव डाला गया हो लेकिन यदि उन्हें स्वतंत्र भी छोड़ दिया जाय तो भी एक बार बाजार स्थायी हो जाने पर, वे स्थानीय उत्पादन को ही वरीयता देंगी। इन विदे ी कम्पनियों से प्रेरित होकर, एक भारतीय कम्पनी, मोदी केयर ने भी प्रत्यक्ष विपणन व्यवस्था प्रारम्भ की है। ये सभी मुक्त व्यापार के सकारात्मक प्रभाव हैं।

ब्रिटिश कालीन भारत में मुक्त व्यापार

मुक्त व्यापार ने अपना प्रभाव ब्रिटि ा कालीन भारत में भी छोड़ा। अंग्रेजों ने प्रथम वि व युद्ध भुारू होने से पूर्व तक, सन् 1914 तक, मुक्त बाज़ार–अर्थव्यवस्था को संचालित किया। सन् 1914 में भारत, ब्रिटि ा कपड़े की अपेक्षा, ब्रिटि ा कपड़ा बनाने वाली म ीनों का सबसे बड़ा आयातक दे ा था। इस प्रकार भारत इंग्लैण्ड से आयतित म ीनों से उत्पादन कर कपड़े का बड़ा निर्माता बन रहा था।

सन् 1919 की, ब्रिटिश व्यापार आयुक्त की रिपोर्ट के अनुसार बहुत सी ऐसी बड़ी व्यापारिक संस्थाओं ने, जो ब्रिटेन में बनी अभियांत्रिकी वस्तुओं का लेन–देन करती थी, ने भारत में स्वयं का उत्पादन प्रारम्भ कर दिया और ब्रिटेन में बनी वस्तुओं की भारत में ब्रिकी करने के लिए आपत्ति दर्ज की।

उन्होंने ब्रिटेन में बनी वस्तुओं का लेन–देन बन्द कर दिया लेकिन अब उन्होंने स्थानीय बाज़ार स्थापित कर लिए, स्थानीय उत्पादन प्रारम्भ कर दिया और स्वयं की बनाई वस्तुओं को अपेक्षाकृत ज़्यादा बेचना प्रारम्भ कर दिया।

आधुनिक भूमंडलीकृत अर्थव्यवस्था में मुक्त व्यापार भारत को वि व–स्तरीय उत्पादन केन्द्र बनने के अवसरों को बढ़ायेगा। यह प्रवृत्ति अपना प्रभाव पहले ही छोड़ चुकी है क्योंकि अंतर्राश्ट्रीय (global) निर्माता/उत्पादक सबसे बड़े बाज़ारों के समीप सबसे सस्ते उत्पादक केन्द्रों की तला ा करते हैं। वि ालकाय खिलौने एवं खिलाड़ियों के जूते बनाने वाली कम्पनियाँ, डिजायन करने एवं विपणन करने वाले छोटे कार्यालय, अमेरिका एवं यूरोप में संचालित करती हैं लेकिन अपना सारा उत्पादन सूदूर पूर्वी दे ों में अनुबन्ध के आधार पर कराती हैं। प्रका ाक सम्पादन एवं सुधार का कार्य घरों पर कराते हैं तथा सघन मेहनत वाले कार्य (टाइप सैटिंग एवं मुद्रण) अनुबन्ध के आधार पर ताइवान व सिंगापुर में कराते हैं। भारतीय बाजार एक बड़ा बाज़ार है। भारत वि व की एक उत्पादन भाक्ति बन सकता है। लेकिन इन सबके लिए उसे मुक्त व्यापार की परिस्थितियाँ पैदा करने तथा ढाँचागत निर्माण में निवे ा की आव यकता है।

अपने तर्क को सिद्ध करने के लिए आइये लॉँड्री का उदाहरण देखते हैं। विकसित दे ों के प्रत्येक भाहर में लॉँड्री मिलती है। एक लॉँड्री में काफी संख्या में बड़ी–बड़ी कपड़े धोने एवं सुखाने की म ीनें लगी होती हैं। लोग अपने गंदे कपड़े लेकर वहाँ जाते हैं, म ीनों में सिक्के डालते हैं और बिना फालतू समय बेकार किए, जल्दी ही साफ एवं सूखे कपड़े लेकर वापस घर आ जाते हैं।

हालाँकि इतनी सारी कम्पनियों के होने के कारण, घरेलू कपड़े धोने की म ीन के भारतीय बाज़ार में संतृप्ति आ चुकी है, फिर भी ये बड़ी म ीनें (लाउन्ड्री में प्रयुक्त होने वाली) भारत में नहीं बनायी जातीं। लाउन्ड्री की बज़ाय भारतीय भाहरों में धोबियों का चलन है। यदि मुक्त व्यापार की अवस्था में पुरानी वस्तुओं (second hand) के भी मुक्त व्यापार की व्यवस्था हो तो भारत में भी इन लॉँड्री म ीनों की भरमार हो सकती है और हमारे अधिकां ा धोबी निजी बैंकों से ऋण लेकर इन म ीनों को खरीद व संचालित कर सकते हैं। भारी वर्शा या नमी वाले क्षेत्रों में रहने वाले लोग कपड़े सुखाने वाली म ीनों को पसंद करेंगे एवं भीघ्र ही इन वस्तुओं के लिए एक बाजार तैयार हो जायेगा। न केवल हमारे धोबी आध ुनिक युग के साथ चलेगें वरन् बहुत जल्द इन वस्तुओं का स्थानीय स्तर पर निर्माण/उत्पादन प्रारम्भ हो जायेगा। वर्तमान में मुक्त व्यापार की अनुपस्थिति में इनका स्थानीय उत्पादन खतरे से खाली नहीं है। अभी बाज़ार अनि चत है और विज्ञापन बहुत मँहगा है। यदि व्यापारियों को उत्पादकों/निर्माताओं के लिए बाजार तैयार करने की अनुमति दे दी जाय तो पूरे भारतवर्श में फैक्टरियों की एकदम से बाढ़ आ जायेगी।

नि चत रूप से हमें सुदृढ ढाँचे की आव यकता है। कोई भी अपनी फैक्ट्री ऐसी जगह नहीं लगाना चाहेगा जहाँ कि न सड़कें और बिजली हो और न ही समर्थ बन्दरगाह, हवाई अड्डे और रेलवे सुविधा हो। बड़ी अन्तर्राश्ट्रीय कम्पनियाँ भारत में मौजूद सस्ते श्रम की वजह से यहाँ अपनी उत्पादन इकाइयाँ लगाना चाहती हैं परन्तु हमारा वर्तमान ढाँचा उन्हें पलायन पर मजबूर कर देगा। ढाँचागत सुधार के लिए बड़े स्तर पर निजीकरण तथा सार्वजनिक चीजों, जैसे – सड़क, कानून व्यवस्था आदि में सार्वजनिक निवे ा की आव यकता है। अच्छी पुलिस, फास्ट–ट्रैक कोर्ट, अच्छी सड़कें तथा बिजली मुहैया कराने वाले निजी उपक्रम पूरे वि व को भारत में आकर उत्पादन करने के लिए आकर्शित करेंगे।

हमें वि व स्तरीय निर्माता दे ा बनने के लिए आयात पर प्रतिबन्ध लगाने की आव यकता नहीं है। ''स्वदेशी'' आर्थिक रूप से आत्महत्या करना है। हमें मुक्त व्यापार एवं सुदृढ़ मूलभूत ढाँचे की आव यकता है।

मुक्त व्यापार एवं कृि ा

अन्न में *स्व–पर्याप्तता* (self–sufficiency) या *भोजन सुरक्षा* के नाम पर अनेक व्यक्तियों द्वारा कृशि उत्पादों के मुक्त व्यापार का विरोध किया जाता है। भारतीय किसानों से भारत की आव यकतानुसार सभी कुछ पैदा करने की उम्मीद की जाती है। क्या यह सचमुच बेहतर विचार है? या बेहतर होगा कि जिन वस्तुओं को हम स्वयं प्रभावी तरीके से पैदा नहीं कर सकते उन्हें हम आयात कर लें। आइए जरा सत्य को जाँचे–

यदि मुक्त व्यापार हो, तो भारत को कई क्षेत्रों में आयात करने से ज़्यादा लाभ होगा। जैसे प्रेयरी (Prairies) मैदानों से सस्ता गेहूँ तथा मारी ास एवं जावा से सस्ती भाक्कर। क्योंकि हम ये वस्तुएं उनके जितने प्रभावी तरीके से पैदा नहीं कर पाते।

तब भारतीय किसान किसका उत्पादन करेंगे?

भारतीय किसानों के लिए बेहतर होगा कि वे अपने छोटे–छोटे खेतों में पूरे वि व के लिए फल एवं सब्जी पैदा करें। टोकियो में एक सेब का मूल्य 1500 रुपये तथा एक खरबूज का मूल्य 4000 रुपये है। यदि भारतीय किसान उच्च गुणवत्ता युक्त एवं ऊँची कीमत वाले फलों और सब्जियों को ज्यादा प्रभावी तरीके से पैदा करें और निर्यात करें तथा गेहूँ एवं भाक्कर का आयात करें, तो यह उनके लिए ज्यादा बेहतर होगा। हालाँकि यह सत्य है कि इस सबके लिए बढ़िया ढाँचे की आव यकता होगी ताकि किसान अपने कीमती उत्पादों को अन्तर्राश्ट्रीय बाजार में भेज सकें।

भारत के विभिन्न राज्यों में अपनी अनेक यात्राओं के दौरान मैंने अक्सर गाँवों में फलों के ढेरों को सड़ते हुए पाया है। जैसे– कर्नाटक में भारीफे, उत्तरांचल व हिमाचल में आड़ू, आलूबुखारे और स्ट्राबेरी, बिहार में लीची व आम तथा पूर्वोत्तर क्षेत्र में अनानास आदि।

आज झारखंड में कुछ किसान फूलों की खेती कर रहे हैं। कुमायूँ की पहाड़ियों में, मैं एक बूढ़ी औरत से मिला जो जमीन के अपने से छोटे से टुकड़े में कु ालता पूर्वक अदरक पैदा करती थी और यह उसके जीवन–यापन हेतु पर्याप्त होता था। असल में किसानों के लिए सबसे महत्वपूर्ण है आज़ादी – आज़ादी भाहर के बाज़ारों में अपनी पहुँच की! आज़ादी व मुक्त व्यापार भारतीय किसानों को, छोटे–छोटे खेत होने के बावजूद, अन्तर्राश्ट्रीय श्रम विभाजन में भाामिल

होने के योग्य बनाएगा तथा उन्हें अभूतपूर्व रूप से सम्पन्न बनाने में मददगार होगा।

एक बात और ध्यान रहे – हमारे किसान जो गेहूँ व गन्ना पैदा करते हैं, वह छूट सहित प्राप्त बिजली, पानी व उर्वरक की सहायता से पैदा किया जाता है। यदि इन वस्तुओं को छूट सहित उपलब्ध न कराकर पूरी कीमत पर दिया जाये तो अधिकां ा किसान हानि के चलते खेती ही छोड़ दें। ऐसे किसानों को निः ुल्क बिजली, पानी व उर्वरक देने का कोई मतलब नहीं, जो कि इन्हें प्रभावी रूप से प्रयोग न कर सकें। बिजली, पानी व उर्वरकों का निः ुल्क वितरण इनकी बर्बादी व दुरुपयोग को बढ़ावा देता है, जिससे राजस्व पर ज्यादा बोझ पड़ता है और पर्यावरण की भी हानि होती है।

भारतीय कृशि कुछ अति ाय प्रतिबन्धों से भी दबी है, जैसे किसान अपनी उपज को जहाँ चाहे वहाँ बेचने के लिए स्वतन्त्र नहीं हैं। ऐसे प्रतिबन्ध किसानों के लिए अत्यन्त नुकसानदेह हैं तथा केवल चोरतंत्र (तथाकथित लोकतन्त्र) (kleptocracy) को ही फायदा पहुँचाते हैं।

अतः इस बात का कोई तार्किक आधार नहीं है कि क्यों हमारी स्वतन्त्रतापूर्वक व्यापार करने एवं स्वयं के लिए धन पैदा करने की प्राकृतिक क्षमता पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए राजनैतिक ताकत का प्रयोग किया जाए?

आर्थिक स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।

जब भी मुक्त व्यापार की बात की जाती है तो कुछ व्यक्ति विदे ा विनिमय में कमी की बात करते हैं। अब हम यह जानेंगे कि यदि हमारे पास सशक्त मुद्रा (sound money) है तो हमें विदे ी विनिमय की कमी के हौवे (bogey) से डरने की कोई आव यकता नहीं है।

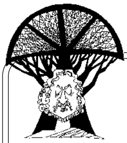

ज़रा सोचिये

- ❖ स्वदे ी को अपनाने से सरकार तथा भारतीय निर्माताओं के बीच सुखद (cosy) अन्तर्सम्बन्ध विकसित होंगे। ये सम्बन्ध ईमानदारी वाले होंगे या भ्रश्ट?
- ❖ कस्टम ड्यूटी दे ा में आयात होने वाली लगभग प्रत्येक वस्तु पर देनी होती है। क्या इन टैक्सों की उपभोक्ता के लिए कोई उपादेयता है?

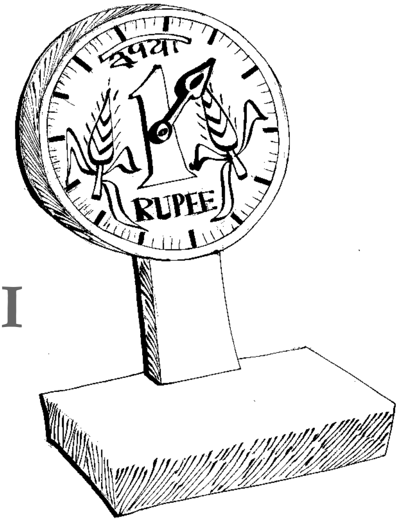

6

सशक्त मुद्रा–I

कैसे, सरकारों ने नहीं बल्कि मनुष्यों ने मुद्रा का आविष्कार किया?

मुद्रा मानव मस्तिश्क के सबसे महान आविश्कारों में से एक है। इसका आविश्कार सरकार द्वारा नहीं किया गया था। आज हम बड़ी आसानी से सरकार द्वारा मुद्रित कागज को मुद्रा के रूप में स्वीकार करते हैं और सोचते हैं कि केवल यह कागज ही धन है। सच्चाई यह है कि यह सरकारी कागज अच्छा धन नहीं है। यदि आप किसी नोट को ध्यान से देखें तो पायेंगे कि इस पर एक वचन लिखा होता है– ''मैं धारक को इतने (माना 'क') रुपये अदा करने का वचन देता हूँ।'' लेकिन यदि आप एक सौ रुपये का नोट लेकर अपने बैंक जाएं और उनसे इस नोट के बदले में डॉलर देने के लिए कहें तो स्थानीय कानून के अनुसार आपको जेल हो जानी चाहिए। 'अच्छे' एवं 'बुरे' धन के अन्तर को समझने के लिए हमें मुद्रा के विकास के इतिहास को जानना होगा।

मुद्रा वस्तु विनिमय में एक वि ाश्ट समस्या – *दोनों पक्षों की आवश्यकताओं का संयोग* (the double coincidence of wants) को हल करता है। यदि आपके पास आलू हैं, और आपको सेबों की आव यकता है तो आपको ऐसे व्यक्ति

की तला ा करनी होगी जिसके पास सेब हों और उसे आलुओं की आव यकता हो। एक ऐसे व्यक्ति के साथ, जिसके पास सेब हों और उसे प्याज की आव यकता हो, आप व्यापार (लेन–देन) नहीं कर सकते।

वस्तुतः मुद्रा इस समस्या के समाधान के रूप में विकसित हुआ। यह सरकार द्वारा उत्पन्न नहीं किया गया।

दरअसल हुआ यह कि कुछ वस्तुएं सभी के द्वारा, सर्वाधिक बिक्री वाली वस्तुओं के रूप में पहचानी गईं। ये वह वस्तुएं थीं, जो बाज़ार में सर्वाधिक तेजी से विनियमित होतीं और जिन्हें अधिकाँ ा व्यक्ति बहुत आसानी से स्वीकार कर लेते।

इस प्रकार, सभी जिन्सों (उपयोगी वस्तुओं) को इस आधार पर क्रम (Rank) प्रदान किया जा सकता है कि उस वस्तु को कितनी आसानी से बेचा जा सकता है। यदि आप सौ *स्टीरियो सिस्टम'* लेकर बाजार में जाएं तो उन सभी को बेचने में आपको कुछ हफ्ते लग सकते हैं, जबकि दूसरी तरफ यदि आप सौ *आलू* या *कंचे* या सौ *सिगरेट* लेकर जाएं तो कुछ घंटों में ही आप अपना सारा स्टॉक बेच देंगे।

सर्वाधिक बिक्री योग्य जिन्स **(commodity)** स्वतः ही धन (मुद्रा) बन जाती है।

इसी बिन्दु को दूसरे तरीके से देखने के लिए, आइये दो वस्तुओं – जैसे गेहूँ व आलू, से सम्बन्धित अर्थव्यवस्था की एक स्थिति लेते हैं। माना इस समय उनका एक नि चत कीमत (विनिमय दर) पर विनिमय किया जा सकता है। कल्पना कीजिए कि अब एक तीसरी वस्तु 'हिरन की खाल' भी बाजार में आती है। अब अर्थव्यवस्था में तीन वस्तुएं हैं, तो स्वाभाविक रूप से प्रत्येक की अन्य दो के पदों में कीमतें विकसित होंगीं। जल्दी ही सभी लोग यह जान जायेंगे कि कितने आलू या गेहूँ हिरन की कितनी खाल के मूल्य के बराबर हैं या इसके उलट, कि, हिरन की कितनी खाल, कितने आलू या गेहूँ के बराबर हैं? अब, ध ान *मूल्य के संग्रहण* (store of value) के रूप में एक और महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। आप आलू व गेहूँ को अनि चत समय के लिए संग्रहीत नहीं कर सकते जबकि हिरन की खाल को कर सकते हैं। इसलिए बहुत मुमकिन है कि इस अर्थव्यवस्था में 'हिरन की खाल' धन के रूप में उभरेगी। लोग बाज़ार से आलू व गेहूँ लाने के लिए हिरन की खाल लेकर जायेंगे। और अपने घर ध ान–सम्पत्ति के रूप मे हिरन की खाल को संग्रहीत करेंगे।

संयुक्त राश्ट्र अमेरिका में, पुरानी दुनिया के नये उपनिवेि ायों के भाुरुआती दिनों में, *''हिरन की खाल''* धन के रूप में उभरी। यहीं से धन के लिए बक (buck) भाब्द प्रचलन में आया। कोई वस्तु *कितने* मूल्य *के योग्य है* के लिए मुहावरा *'हाऊ मैनी बक्स'* (how many "bucks" is something worth) इसी प्रकार प्रचलित हुआ।

अभी तक के इतिहास में बहुत सी वस्तुओं ने धन के रूप में कार्य किया – यथा – कोको बीन्स, जानवरों की खाल, कौड़ी–सीपी, तम्बाकू की पत्तियाँ और निि चत ही लोहा, ताँबा, सोना और चाँदी जैसी धातुएं। रोमन सैनिकों को वेतन नमक के रूप में दिया जाता था। इसी भाब्द से *सैलेरी* (salary) और मुहावरे ***उसके नमक के लायक नहीं*** (not worth his salt) प्रचलन में आए। मेरे बोर्डिंग स्कूल में कंचे धन की भूमिका निभाते थे। नाज़ियों के नज़रबन्दी ि ाविरों में कैदी सिगरेट को धन के रूप में प्रयोग करते थे। इस प्रकार की ये वस्तुएं प्रत्यक्ष (साक्षात्) मुद्रा (hard money) कहलाती है। ये प्रतीकात्मक या सांकेतिक मुद्रा **(**token money) नहीं हैं। धन के उद्दे य को पूरा करने वाली वस्तु का अपना तात्विक मूल्य है। धन के रूप में प्रयुक्त वस्तु स्वयं कुछ मूल्य रखती है।

कागजी मुद्रा प्रतीकात्मक धन है। धन के इस इतिहास के आधार पर आज यह वि वासपूर्वक कहा जा सकता है कि वस्तु विनिमय अर्थव्यवस्थाएं कभी अस्तित्व में नहीं रहीं। एक बार जब उपयोगी वस्तुओं (जिन्सों) की संख्या बढ़ती है तो उनमें से कोई एक या अन्य धन के रूप में स्वाभाविक रूप से उभरती है।

कागज़ी मुद्रा का आविश्कार स्वर्णकारों द्वारा किया गया। भाुरुआत मे, स्वर्णकार आपके सोने को, अपने पास, आपके लिए संग्रहित करते थे तथा बदले में आपको हस्ताक्षरित कागज की रसीद देते थे। इसलिए जब आपको कुछ खरीददारी करनी होती तो आप वह रसीद लेकर स्वर्णकार के पास जाते, उससे अपना सोना प्राप्त करते व बाजार की ओर रुख करते थे।

जल्दी ही लोगों ने महसूस किया कि अपना सोना उपयोग करने हेतु हर बार स्वर्णकार के पास जाने के बजाय, वे सीधे रसीद ही व्यापारियों को दे सकते हैं। रसीद दिखाकर, व्यापारी स्वर्णकार से सोना प्राप्त कर सकता था। ये रसीदें मुक्त रूप में प्रतीकात्मक मुद्रा (token money) के रूप में प्रयुक्त की गयी और ***धारक नोट*** (bearer notes) बन गई। कोई भी इन नोटों को उस स्वर्णकार (जिसके हस्ताक्षर नोट पर हों) के पास ले जाकर सोना प्राप्त कर सकता था। इस व्यवस्था ने लोगों के लिए मुक्त रूप से प्रतीकात्मक मुद्रा को

प्रयोग करना संभव बनाया। नोट पूरे बाज़ार से गुजरते थे और असंख्य निजी स्वर्णकारों के ये धारक नोट ही धन थे।

प्रतियोगी, निजी नोट जारी कर्ता, बिना सरकारी नियंत्रण के मुद्रा जारी कर रहे थे। यह मुक्त मुद्रा का दौर (period of free money) था।

मुद्रा जारी करने की प्रक्रिया पर सरकार का नियंत्रण, मिलावट या खोट मिलाने (debasement) की समस्या को जन्म देता है। इस घटना क्रम (phenomenon) को समझने के लिए आज के समय से कुछ सदी पूर्व जाइये और कल्पना कीजिए कि आप *शांग्री–ला* (Shangri- La) के राजा हैं।

यदि आप अच्छे राजा होते तो, आप सर्वोच्च भाुद्धता वाले सिक्कों का टंकण कराते ताकि आपका चेहरा (आपके द्वारा टंकित सिक्का) आपके साम्राज्य के प्रत्येक कोने तथा बाहर के संसार में भी जा सके और आपकी ईमानदारी, अखण्डता व न्यायप्रियता का प्रतीक हो सके। आस्ट्रिया के हैप्सबर्ग ने भाुद्ध सोने के सिक्के टंकित किए जिन्हें राइकस्थेलर (reichsthaler) के नाम से जाना जाता है। यह उत्तरी अमेरिका में सर्वाधिक प्रचलित सिक्का था तथा इसी भाब्द के थेलर (Thaler) भाग से डॉलर (Dollar) भाब्द की उत्पत्ति हुई है।

यदि आप बुरे राजा होते तो आप सिक्कों में कोई खोटी धातु (base metal) जैसे – पीतल, मिलाते और उनका वजन न्यूनतम करते। यह प्रक्रिया ***खोट मिलाना*** (debasement) कहलाती है। इस खोट मिलाने की प्रक्रिया का तात्कालिक उद्दे य (लाभ) आपके द्वारा जारी किये जा सकने वाले सिक्कों की संख्या बढ़ाना होता। इस प्रकार आप 5 टन भाुद्ध सिक्कों की बजाय 6 टन अ ुद्ध (खोटे) सिक्के जारी कर पाते। *भाांग्री–ला* का बुरा राजा अपने अतिरिक्त सिक्कों को भाराब, औरत और युद्ध पर खर्च करता।

खोट मिलाकर मुद्रा की मात्रा बढ़ाने (5 टन से 6 टन करने) से कीमतें बढ़ती हैं तथा परिणामस्वरूप मुद्रास्फीति उत्पन्न होती है।

इतिहास, सरकारों द्वारा अ ुद्ध (अनुपयुक्त) मुद्रा जारी करने के उदाहरणों से भरा पड़ा है। भाक्ति ााली रोमन साम्राज्य खोट मिलाने की वजह से समाप्त हो गया। कैसे? इसे समझने के लिए समय में और थोड़ा पीछे की ओर चलते हैं और कल्पना करते हैं कि हम एक ऐसे दक्षिण भारतीय गाँव में हैं, जहाँ कौड़ी धन के रूप में कार्य करती है। अब कल्पना कीजिए कि एक दिन समुद्र किनारे घूमते हुए आपको समुद्र द्वारा उत्सर्जित कौड़ियों का एक खजाना मिल गया।

अचानक, आपके सभी सपने सच हो गये। आप गाँव की चौपाल (हाट) जा कर वह सब कुछ खरीद सकते हैं, जो मुद्रा (धन) द्वारा खरीदा जा सकता है। आप अपनी कौड़ियों के साथ बाजार जाते हैं तथा उनमें से काफी कुछ खर्च करते हैं। आप जमीन, मकान, भोजन, पेय पदार्थ और प ु या जो कुछ आप चाहते हैं, सब खरीद लेते हैं। लेकिन जरा दूर–गामी प्रभावों के बारे में सोचिए!

आपकी अच्छी किस्मत, प्रत्येक की अच्छी किस्मत बन जायेगी। जमीन–मालिक, मजदूर, प ु–फार्म वाले, किसान, व्यापारी आदि सभी आपके द्वारा खर्च किये पैसे में से हिस्सा बटोरेंगे और स्वयं बाजार जाकर अपने लिए ज्यादा खरीददारी करेंगे। प्रत्येक वस्तु के लिए माँग (demand) बढ़ेगी जबकि आपूर्ति (supply) वही रहेगी। इस प्रकार प्रत्येक वस्तु की कीमत बढ़ेगी। और मुद्रा स्फीति (inflation) पैदा हो जाएगी।

चूँकि कौड़ियों की बहुतायत होगी अतः परिणामस्वरूप कौड़ियों का मूल्य भी गिरेगा। यदि कौड़ियों की जगह आपको केकड़े मिले होते और आप उन्हें लेकर बाजार गये होते तो कौड़ियों की अपेक्षा केकड़ों का मूल्य गिरा होता। ठीक इस प्रकार, जब आपको कौडियाँ मिलती हैं तो कौड़ियों का मूल्य, केकड़ों की अपेक्षा (या अन्य किसी वस्तु की अपेक्षा) गिरता है।

मुद्रा की मात्रा में अधिकता होने के कारण मुद्रा के मूल्य में आई गिरावट ही मुद्रास्फीति है। इस सिद्धान्त को ***मुद्रा के मात्रात्मक सिद्धान्त*** (quantity theory of money) के नाम से जानते हैं।

स ाक्त मुद्रा (sound money) के दो लक्षण होते हैं–

1. स्थिर मूल्य (stable value) या मुद्रास्फीति की अनुपस्थिति ।

2. मुक्त विनिमेयता (convertibility)

इन दोनों ही पक्षों पर भारतीय रुपया, तीसरी दुनिया के अधिकाँ ा दे ाों की मुद्राओं की तरह औंधे मुँह गिरता है। आजकल लगातार मुद्रा ढहने की खबरें सुनने में आती हैं। ये सारी मुद्राएं तीसरी दुनिया की सरकारों द्वारा जारी मुद्राएं हैं। यह सभी अस्थिर मुद्राएँ (unsound money) हैं।

समाजवादी भारतीय सरकार ने अत्यधिक मात्रा में मुद्रित कर, भारतीय रुपये को नश्ट कर दिया है। वे इसे घाटे की क्षतिपूर्ति (deficit financing) के रूप में परिभाषित करते हैं। इसका तात्पर्य है कि जब उनके खर्चों के लिए राजस्व (द्वारा अर्जित धन) कम पड़ जाता है, तो वे अतिरिक्त नोट छापते हैं और

उन्हें प्रयुक्त करते हैं। मुद्रा के मात्रात्मक सिद्धान्तानुसार यह प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से ***मुद्रास्फीति*** (inflation) को जन्म देती है। इसके लिए सरकार ***मुद्रास्फीति कर*** एकत्र करती है। जब सरकार इस अतिरिक्त धन को खर्च करती है, तो वह जनता से स्थावर सामग्री (real goods) आज के मूल्य पर प्राप्त करती है लेकिन, जब जनता इस पैसे को खर्च करती है, तब तक वस्तुओं की कीमतें बढ़ चुकी होती हैं और वे उतने ही धन में कम मात्रा में वास्तविक सामग्री प्राप्त कर पाते हैं। मुद्रास्फीति कर के माध्यम से सरकार हमारे ही धन द्वारा हमें धोखा देती है, जैसे–हमारा नगद, बैंक खाते, पें ान व भविश्य निधि इत्यादि के धन द्वारा। मान लीजिए हमने लोक भविश्य निधि (Public Provident fund – PPF) में 10 प्रति ात की ब्याज दर पर एक लाख रूपये का निवे ा किया। सरकार सात प्रति ात की मुद्रा स्फीति पैदा करती है। तो परिणामस्वरूप, सरकार मात्र तीन प्रति ात ब्याज देगी, भोश मुद्रास्फीति कर होगा।

> क्या आप जानते हैं कि मुद्रा स्फीति के अतिरेक ने जर्मनी में हिटलर और चीन में माओ को जन्म दिया?

वर्तमान में, इसमें से अधिकाँ ा धन नौकर ाहों के बजट पर खर्च किया जाता है जो कभी घटने का नाम नहीं लेता। इसका कारण नौकर ाहों द्वारा तार्किक रूप से बजट बढ़ाना है, जिसके बारे में पूर्व के अध्यायों में चर्चा की जा चुकी है।

इस धन को घाटे में चल रहे सार्वजनिक निकायों पर भी खर्च किया जाता है। इस धन को सार्वजनिक सामग्रियों पर खर्च नहीं किया जाता है। लेकिन अभी कुछ इससे भी बदतर है– हमारा बैकिंग तंत्र पूरी तरह राजनीति का ि ाकार है। अधिकाँ ा भारतीय बैंक सरकार द्वारा संचालित हैं और वि ाल घाटा प्रदि ति करते हैं। अब हम यह देखेंगे कि यह सब रुपये की स्थिरता (स ाक्तता) को कैसे प्रभावित करता है?

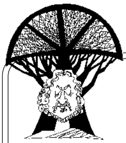

ज़रा सोचिये

- ❖ कुछ ऐसी जिन्सों (उपयोगी वस्तुओं) पर निजी भाोध कीजिए, जिन्होंने मानवीय इतिहास के दौरान धन की भूमिका अदा की है।

- ❖ सिक्कों का टंकण करने वाले पहले भाहर या राज्य के बारे में जानकारी प्राप्त करते हुए ग्रीक इतिहास पर भी भाोध कीजिए और समाज के व्यवसायीकरण पर इसके प्रभावों का अध्ययन कीजिए।

- ❖ रोमन साम्राज्य के समाप्त होने तथा खोट मिलाने की कहानी की खोज कीजिए। क्या भारतीय इतिहास में भी ऐसे मूर्खतापूर्ण वित्तीय प्रयोगों के उदाहरण हैं?

- ❖ मुद्रास्फीति कर की कार्य पद्धति को द ाने वाला फ्लो चार्ट बनाइये । मुद्रास्फीति कर, कैसे आयकर के समान है?

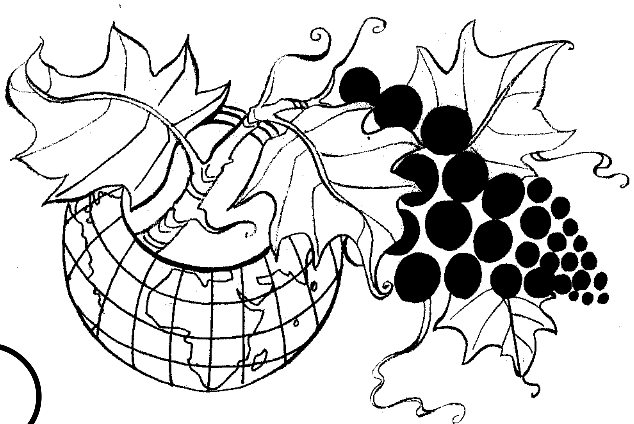

7

सशक्त मुद्रा–II

'धन के उत्पत्ति' के विशय में समझने के बाद आइये अब 'ऋण' (credit) के विशय पर आगे बढ़ते हैं।

उधार या ऋण प्राप्त करने की योग्यता (credit worthiness) एक ठोस एवं सुनि चत गुण है, जो किसी में होता है और किसी में नहीं। अपने पड़ोस के बाजार में, जहाँ सभी दुकानदार मुझसे परिचित हैं, मुझे अक्सर उधार (credit) मिल जाता है। मेरे पर्स में कम पैसे होने के बावजूद भी मछली वाला मुझे बड़ी सी 'आयलिश' मछली खु ी–खु ी दे देता है क्योंकि वह जानता है कि बकाया पैसा मैं कभी–न–कभी चुका दूँगा। सिगरेट वाला मुझे जानता है और मेरे पास पैसे न होने के बावजूद वो मुझे सिगरेट दे देता है। हर किसी को यह उधार प्राप्त करने की सुविधा नहीं मिलती क्योंकि हर कोई उधार प्राप्त करने योग्य नहीं होता।

ऐसा ही क्रेडिट कार्ड के लिए लागू होता है। जब मैं स्वतन्त्र (free-lance) पत्रकार था, तब कोई भी क्रेडिट कार्ड कम्पनी मुझे सदस्यता नहीं प्रदान करती थी। जब मैं एक नियमित नौकरी करने लगा तब सभी मुझे अपना ग्राहक बनाने के लिए टूट पड़े।

जब ऋण (credit) किसी ऋण प्राप्त करने योग्य व्यक्ति के पास जाता है तो सब ठीक रहता है और साथ–साथ अर्थव्यवस्था सुचारू रूप से चलती है। लेकिन जब सरकार बैंकिंग व्यवस्था में दखल देती है और ऋण वितरण को निर्दे ात करती है, तो यह सुखद परिणाम दायक नहीं रह जाता है। ऐसी स्थिति में ऋण वित्त मंत्रालय के पसंदीदा अभ्यर्थियों को चला जाता है, जबकि वे ऋण प्राप्ति के इतने योग्य नहीं होते। इसीलिए, राश्ट्रीय बैंकिग व्यवस्था गैर नि पादित देनदारियाँ (Non-Performing Assets - NPAs) के बोझ से दबी हुई है। इन्हें सीधे–सीधे ऋण प्राप्ति हेतु अयोग्य लोगों द्वारा की गयी लूट कहा जाना चाहिए।

जब किसी बैंक पर ऐसा कर्ज बहुत बढ़ जाता है तो वह दिवालिया हो जाता है। परन्तु भारतीय बैंकों में ऐसी स्थिति में पैसे की आपूर्ति राजकोश से की जाती है। यह जनता का पैसा है, जो बर्बाद हो रहा है।

जब कई सारे बैंकों पर ऐसे कर्ज का बोझ पड़ा होता है और केन्द्रीय बैंक बहुत ज्यादा मुद्रा जारी कर देता है, तब सरकार के पास मुद्रा को अपरिवर्त्य या अविनिमेय **(inconvertible)** रखने के सिवाय और कोई चारा नहीं रह जाता है। अगर भारत को सशक्त मुद्रा (sound money) चाहिए (जिसका सरलता से विनिमय किया जा सके और जिसकी कीमत स्थिर हो) तो उसके पास बैंक व्यवस्था का निजीकरण करने और वित मंत्रालय को ऋण वितरण–निध ारण से दूर रखने के अलावा और कोई रास्ता नहीं है।

> इस प्रकार का क्रेडिट–राज लाइसेंस परमिट राज से भी बुरा है क्योंकि इसके कारण एक खुली अर्थव्यवस्था में मुद्रा के ढहने **(collapse)** की स्थिति बन जाती है।

ऋण का निजी वितरण, न केवल कु ाल व प्रभावी होता है वरन् यह नैतिक व्यवहार को बढ़ावा देता है। सिगरेट वाले या मछली वाले से अपने उधार को जारी रखने के लिए मुझे यह नि चत करना अत्यन्त आव यक हो जाता है कि मैं उनका सारा उधार समय पर चुका दूँ। अगर मैं ऐसा नहीं करूँगा तो उधार की इस सुविधा से मैं वंचित हो जाऊँगा। यदि अपने क्रेडिट–कार्ड के उधार या बकाया को हर महीने मैं अदा न करूँ तो कार्ड की कम्पनी मेरे क्रेडिट कार्ड को निरस्त कर देगी। दूसरी तरफ ऋण के राजनैतिक वितरण–निर्धारण से पैसा उन लोगों के पास जाता है जिनके 'सम्बन्ध' (links) नेताओं एवं नौकर ाहों से होते हैं। यह घूसखोरी और भ्रश्टाचार को बढ़ावा देता है और ईमानदार अभ्यर्थी ऋण प्राप्त नहीं कर पाते। यह बैंकिंग व्यवस्था को भी

कमजोर बनाकर पतन की ओर उन्मुख करता है। हाल ही के पूर्वी एि ाया के आर्थिक संकट में उनकी मुद्रा के पतन का कारण अंतरंग–मित्रवाद (cronyism) ही था। वहाँ के बैंकों ने सत्ता पक्ष के तथाकथित मित्रों को भारी मात्रा में ऋण दिया और जब वे इकाईयाँ (फर्म) डूबीं, तो अपने साथ–साथ पूरी बैंकिग व्यवस्था एवं मुद्रा को भी ले डूबीं।

इसीलिए सरकार को बैंकिंग व्यवस्था एवं मुद्रा जारी करने की व्यवस्था से अलग करने के पर्याप्त प्रभावी कारण हैं। सरकार ऋण का गलत वितरण–निध ारण करती है और मुद्रा को भ्रश्ट (खोटा) बनाती है। चूँकि हमारा दे ा एक लोकतान्त्रिक दे ा है, अतः यहाँ बहुत ज़रूरी है कि सरकार को धन मुद्रण एवं स्वयं को ही ऋण देने की योग्यता से अलग कर दिया जाय। लोकतान्त्रिक सरकारों से अपेक्षा की जाती है कि वह करदाताओं का प्रतिनिधित्व करें। ''बिना प्रतिनिधित्व के कर नहीं'' – लोकतंत्र का सदैव यही नारा रहा है। परन्तु जब सरकार के पास अधिक से अधिक मुद्रा छापने की योग्यता आ जाती है, तो वे करदाताओं का प्रतिनिधित्व बंद कर देते हैं। इस क्षमता के आने के बाद वे करदाताओं पर ज़्यादा ध्यान नहीं देते और मुद्रित धन को अपना वोट बैंक बढ़ाने में प्रयुक्त करते हैं।

निम्न पांच तरीकों से स ाक्त मुद्रा (sound money) बिना किसी राजनैतिक नियंत्रण के प्राप्त की जा सकती है –

- मुद्रा परि ाद जैसा कि हाँगकाँग में है। जहाँ प्रबोधक प्राधिकरण (monetary authority) निजी बैंकों को विनिमय की नि चत दर पर हाँगकाँग डॉलरों को अमेरिकी डॉलरों से बदलने की अनुमति देता है।

- स्वर्ण–आधारित परि ाद इसी का दूसरा रूप है जो अपने पास सोना रखती है और उस सोने की कीमत के अनुरूप मुद्रा जारी करती है।

- राजनैतिक नियंत्रण से मुक्त **स्वतन्त्र प्रबोधक प्राधिकरण** (अगर यह सचमुच संभव हो)

- अन्तर्रा ट्रीय प्रबोधक प्राधिकरण–जैसे यूरो (जो कई सरकारों का प्रतिनिधित्व करती है) का जारी करना।

- निजी क्षेत्र की मुद्रा

उपरोक्त सभी तरीकों में *निजी क्षेत्र की मुद्रा* को विद्वान प्राथमिकता देते हैं। इसका कारण है क्योंकि यदि निजी मुद्रा आव यकतानुरूप अपनी आध

ाारभूत सम्पत्ति – (चाहे यह सोना हो, चाँदी हो, प्लेटिनम हो या सिगरेट के पैकेट्स के रूप में हो) – में परिवर्तनीय नहीं होगी तो कोई इसे स्वीकार नहीं करेगा। इसलिए मुद्रा हमे ाा हार्ड मनी (hard money) अर्थात् स्थायित्व वाली होनी चाहिए। अपनी आधारभूत परिसम्पत्ति को पुनः पाने में अक्षम (अ ाोध्य) कागज के टुकड़े (जैसी मुद्रा सरकार वर्तमान में मुद्रित करती है), अच्छा धन नहीं हैं।[6]

इसलिए यह तर्क कि ''मुक्त व्यापार 'मूल्यवान विदे ा विनिमय कोश' को प्रभावित करेगा'' गलत है। यदि आप अपने सोने के बदले फरारी कार का आयात करते हैं, तो यह सौदा आपके अनुसार फायदे का है, क्योंकि जो धन गया, वह आपका था तथा जो फरारी आपके आंगन में खड़ी है, वह भी आपकी ही है। जब मुद्रा स्थायी होती है, तो यह मायने नहीं रखती कि वह कहाँ जा रही है, ब ार्ते उसके बदले में हमें स्थावर पदार्थ (real goods) प्राप्त हो रहे हों।

स ाक्त मुद्रा मुक्त व्यापार को सक्षम बनाती है। 'बहुमूल्य विदेश विनिमय' का तर्क केवल उनके द्वारा दिया जाता है, जो इतनी अधिक मात्रा में स्थानीय मुद्रा जारी कर चुके हैं कि उनके पास इसके मूल्य जितना कोश नहीं है। हमारा रिजर्व बैंक, वास्तव में, पूर्णतः दिवालिया है। इस प्रकार फेरा (FERA – Foreign Exchange Regulation Act) जैसे कठोर कानून अनैतिक हैं। यदि केन्द्रीय बैंकर स्वयं द्वारा जारी कागज के नोटों को आधारभूत परिसम्पत्ति में परिवर्तित नहीं कर सकता, तो उसे जेल (कर्जदारों की जेल) जाना चाहिए। अन्यथा, प्रत्येक नोट पर लिखे वचन का, और क्या मतलब है?

इसे और बेहतर ढंग से समझने के लिए, एक मोहल्ले से दूसरे मोहल्ले में घूम–घूम कर रेहड़ी पर सब्जी बेचने वाले पर कभी ध्यान दीजिए। वह अन्ततः अपनी सब्जी बेच डालता है और अपने ग्राहकों के धन से अपना पैसा बनाता है। क्या वह जनता का भात्रु है? आखिरकार वह जनता के धन से अपना धन बनाता है। लेकिन ऐसा ***नहीं*** है। हाँ, उसने पैसा लिया है, लेकिन बदले में उसने सब्जी छोड़ी है। ग्राहक फायदे में हैं क्योंकि उन्होंने पैसे की बजाय सब्जी को प्राथमिकता दी है और सब्जी वाला भी फायदे में है क्योंकि उसने धन को सब्जी से ज्यादा वरीयता दी है। *व्यापार एक धनात्मक योग का खेल है।* (Trade is a positive sum game) जिसमें दोनों पक्ष जीतते हैं।

---

[6] निजी मुद्रा के सम्बन्ध में विस्तृत परिचर्चा के लिए *श्री सौविक चक्रवर्ती* की पुस्तक *एन्टीडोट : एस्सेज अगेन्स्ट द सो ालिस्ट इंडियन स्टेट* (मैकमिलन, नई दिल्ली, 2000) देखें। साथ ही *प्रोफेसर आर0 के0 अमीन* की *'मनी, मार्केट एण्ड मार्केट वालाज'* (सेन्टर फॉर सिविल सोसाइटी, नई दिल्ली, 2002) भी देखें।

किसी भी बाज़ार में जाइये । आप वहाँ लोगों के ऐसे झुंड पायेंगे, जो धन लेकर आते हैं, अपना धन छोड़ते हैं और बदले में सामान (वस्तुएं) के ढेर के साथ वापस जाते हैं। क्या इन बाज़ारों के सभी दुकानदार समाज के दु मन हैं? ***बिल्कुल नहीं***। मुक्त व्यापार (free trade) एवं स ाक्त मुद्रा (sound money) युक्त एक अन्तर्राश्ट्रीय अर्थव्यवस्था में काफी सारा धन जायेगा, लेकिन, कई सारी वस्तुएं भी आयेंगी। दोनों पक्ष जीतेंगे। कोई नहीं हारेगा।

जब आप कुछ खरीदने (मान लीजिए एक किताब) के लिए किसी दुकान पर जाते हैं तो जब दुकानदार आपको पुस्तक सौंपता है तो आप उसे **ε *न्यवाद*** कहते हैं । जब आप दुकानदार को धन अदा करते हैं, तो दुकानदार भी आपको ***धन्यवाद*** कहता है। यह तथ्य कि 'दोनों पक्ष एक दूसरे को धन्यवाद कहते हैं' यह सिद्ध करता है कि दोनों पक्ष फायदे में हैं। *व्यापार धनात्मक योग का खेल है।* (Trade is a positive sum game) इसे हमे ा याद रखिए।

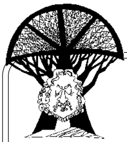

ज़रा सोचिये

- बैंक ऋण उत्पन्न करते हैं – इस कथन की सत्यता की जाँच कीजिए।
- कार एवं हाउसिंग लोन (गृह ऋण) अदायगी में इतनी कम चूक क्यों होती है? (कार एवं हाउसिंग लोन में इतनी कम ऋण अदायगी क्यों है?
- एक ऐसी स्थिति की कल्पना कीजिए जब सभी के पास आई0ओ0यू0 (I.O.U. - I Owe You) अर्थात् मैं आपको लौटाने के लिए वचनबद्ध हूँ, जारी करने का अधिकार हो तब आप किसका आई0ओ0यू0 (I.O.U.) स्वीकार करेंगे? आई0ओ0यू0 को छुड़ाने के बदले में आप क्या चाहेंगे?

8

रोज़गार

(अ) रोज़गार का सृजन (Employment Generation)

भारत सरकार रोज़गार सृजन के नाम पर अत्यधिक मात्रा में धन खर्च करती है। इसी प्रकार चोर तंत्र (kleptocracy) में धन को सार्वजनिक वस्तुओं से विमुख किया जाता है। ध्यान रहे नेताओं की इन तथाकथित योजनाओं (projects) पर नौकर ाहों द्वारा धन व्यय किया जाता है। इस प्रकार वे राजस्व से प्राप्त धन को (एवं घाटे की पूर्ति के रूप में प्राप्त धन को) प्रकट रूप में लाभदायक तरीके से व्यय करते हैं।

सच्चाई यह है कि ये रोज़गार पैदा करने वाली योजनाएं कुछ और नहीं हैं, वरन् राजनैतिक बाज़ार के धुरंधरों द्वारा जनता के धन को चुराने के तरीके हैं।

सरकारी व्यय, निजी व्यय से ज्यादा रोजगार पैदा नहीं कर सकता। यदि करदाता कर देने की बजाय उस पैसे को अपने पास रखते और स्वयं व्यय करते, तो भी समान मात्रा में ही रोजगार उत्पन्न होता।

यदि करदाता उस धन को निजी बैंकों में संचित करें और बैंक उस पैसे द्वारा व्यावसायिक ऋण उपलब्ध कराएं तो समान मात्रा में रोज़गार उपलब्ध होगा।

जबकि चोरतांत्रिक (kleptocrats) उपरोक्त विधि से रोज़गार निर्माण के बजाय, इन तथाकथित ''योजनाओं'' को धन मुहैया कराने के लिए अतिरिक्त मुद्रा छापते हैं और इस प्रकार वे मुद्रास्फीति को जन्म देते हैं। गरीबों की तो दूर, वे किसी की भी मदद नहीं कर रहे हैं। इस प्रकार की योजनाओं को तुरन्त रोका जाना चाहिए तथा सम्पूर्ण सार्वजनिक व्यय को सार्वजनिक वस्तुओं पर केन्द्रित करना चाहिए। हमें चोरों के इस तथाकथित ''रोज़गार निर्माण'' नामक ाड्यन्त्र की आव यकता नहीं है।

(ब) खादी–भ्रान्ति **(The Khadi Fallacy)**

''म ीनें बेरोज़गारी उत्पन्न करती हैं। इसलिए यदि हम उत्पादन के लिए सघन श्रम वाले उपाय प्रयोग में लाएं तो रोज़गार को बढ़ाया जा सकता है। ''इस तथाकथित द न में अपनी आस्था प्रदि त करने के लिए भारतीय राजनीति से जुड़े अधिकाँ ा व्यक्ति खादी पहनते हैं। वे यह भी वि वास करते हैं कि इस दे ा में (जो उनकी नजर में आव यकता से अधिक जनसंख्या वाला है) आधुनिक म ीन के प्रयोग की जगह, रोज़गार उत्पादन का यह तरीका ही उपयोगी है।

यह तर्क ''उत्पादकता'' (productivity) और ''क्षमता'' (efficiency) को नजर अंदाज करता है। श्रम विभाजन धन उत्पादन का तरीका है। यह *श्रम विभाजन* व्यवस्था में हमें बने रहने के लिए उपयुक्त कार्यक्षेत्रों (Niches) का निर्माण करता है। अपने लिए उपयुक्त व निर्मित इन वि ाश्ट कार्यक्षेत्रों में हम कम–से–कम श्रम प्रयोग से अधिकतम पैदा करने का प्रयास करते हैं – और ध ान कमाने का प्रयास कर रहे एक मेहनती व्यक्ति के लिए यही तर्कसंगत भी है। यदि अपने कार्य में सहायता के लिए म ीन का प्रयोग उस व्यक्ति के लिए फायदेमंद है, तो म ीनों का प्रयोग नि चत ही राश्ट्र के लिए भी फायदे का सौदा है। फिर म ीनों का प्रयोग न करके राश्ट्र क्यों नुकसान उठाए? म ीनें बेरोज़गारी बढ़ाती हैं या कम–से–कम मेहनत में ज़्यादा–से–ज़्यादा वस्तुओं का उत्पादन कर अधिक धन बनाने में मदद करती हैं। सच क्या है? अपने चारों ओर देखते हुए आपको क्या लगता है? क्या हम सभी आज की अपेक्षा पाशाण युग में ज़्यादा बेहतर रहते – जहाँ पत्थरों के प्रयोग से लाभदायक रोज़गार प्राप्त होता।

म ीनों की उत्पादन क्षमता ज्यादा होती है इसलिए वे वस्तुएं बहुतायत में पैदा करती हैं। इससे उत्पादित वस्तु के मूल्य में कमी आती है और ज़्यादा से ज़्यादा व्यक्ति उसे वहन कर पाते हैं। इस प्रकार बाजार फैलता है और अंततः म ीनों के आगमन से पहले की अपेक्षा ज्यादा रोजगार उत्पन्न होता है। इसके

लिए कार सबसे अच्छा उदाहरण है –

जब हेनरी फोर्ड ने कार उत्पादन के लिए एसेम्बली लाइन तरीके को प्रयोग करना भुारू किया तो उनकी उत्पादकता बढ़ी। इस प्रकार उन्होंने समान समय में कम श्रम व ज्यादा म ीनों की सहायता से ज्यादा कारों का उत्पादन किया। परिणामतः जल्दी ही कार सस्ती हो गयी और ज्यादा लोग इसे वहन कर सके। इस प्रकार कार का बाजार फैला ।

आज, भारत सहित वि वभर के अधिकाँ । ऑटोमोबाइल उद्योग स्वचालित हैं। जबकि ऑटोमोबाइल उद्योग में हेनरी फोर्ड के समय की अपेक्षा आज रोजगार कहीं ज्यादा है।

इस भ्रम (fallacy) के बारे में एक चुटकुला प्रसिद्ध है –

एक जगह जमीन खोदने वाली बड़ी सी म ीन (बुल्डोजर) जमीन खोद रही थी। दो मजदूर उसके बड़े–बड़े जबड़ों को मिट्टी उठाते और दूसरी जगह गिराते देख रहे थे। तभी उनमें से एक बोला – यदि यह म ीन न हो तो हममें से एक हजार लोग कुदाल की सहायता से यह कार्य करते और रोज़गार पाते। दूसरा बोला–अगर कुदाल की जगह से चम्मच से करते तो कम से कम लाखों लोग रोजगार पाते।

आर्थिक स्वतन्त्रता **(Economic Freedom)** रोजगार बढ़ाती है

रोज़गार की सम्भावना के लिए वास्तविक सामग्री व सेवाओं का आदान–प्रदान होना आव यक है। सरकार रोज़गार उत्पन्न नहीं कर सकती। वरन् यह सिर्फ **कर** लगा सकती है और उसे खर्च कर सकती है। रोज़गार पैदा करना तभी संभव है जबकि आर्थिक स्वतन्त्रता हो तथा लोगों की आर्थिक गतिविधियों में सरकारी बाबुओं द्वारा बाधा न डाली जाए। व्यापार सम्बन्धी प्रतिबन्ध, मुद्रा सम्बन्धी प्रतिबंध, लाइसेंस–परमिट राज आदि जैसी स्थितियाँ समाप्त होनी चाहिए। एक गरीब दे । में लोगों को ईमानदारी से धन पैदा करने व अपनी आव यकताओं की पूर्ति करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

अब प्र न उठता है कि ग्रामीण क्षेत्रों की बेरोज़गारी का क्या हो? जहां अनेकों *भूमिहीन मजदूर* व *कश्टकृश्य किसान* (ऐसे किसान जिनके पास कृशि हेतु नाममात्र की भूमि है – marginal farmers) मौजूद हैं। दरअसल सच यह है कि ऐसे लोग *स्व–पर्याप्तता* (self-sufficiency) में रह रहे हैं तथा हमे ाा गरीब

रहना इनकी नियति बना दी गयी है। उनके पास ऐसा कुछ अतिरेक में नहीं है जिसे वे बाज़ार में लेकर जा सकें। ग्रामीण क्षेत्रों में रोज़गार उत्पन्न करने के लिए धन व्यय करना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं है। दे ा को मुक्त व्यापार वाले 500 भाहरों वाला बनाना ज़्यादा बुद्धिमत्तापूर्ण है ताकि ये गरीब लोग भाहर में जाकर बड़े स्तर के श्रम विभाजन में भाामिल हो सकें।

जैसे–जैसे दे ा आगे बढ़ेगा, राश्ट्रीय आय में कृशि का हिस्सा कम होगा तथा नौकरियों एवं निर्माणों का हिस्सा बढ़ेगा। यदि ज़्यादा–से–ज़्यादा व्यक्ति कृशि पर निर्भर छोड़े जायेंगें तो एक तरह से अति ाय गरीबी उनकी नियति बन जायेगी। ग्रामीण गरीबों को दी जा सकने वाली सर्वोत्तम व्यवस्था नगरीकरण है।

मुक्त व्यापार की व्यवस्था के तहत यदि वे सड़क के किनारे छोटी सी दुकान भी चला पायें तो कम–से–कम उन्हें रोज़गार तो मिलेगा। वर्तमान में हमारे यहाँ नगर विकास एवं गरीबी उन्मूलन मंत्रालय है और यह फेरी वालों और रेहड़ी वालों से धन की उगाही करता है। गरीबों को वास्तव में इस बात की आव यकता है कि वे भाहर के बाज़ार में स्वतन्त्रता पूर्वक अपना व्यवसाय संचालित कर सकें। गरीबों के हितों के लिए सरकार को बाज़ार से बाहर ही रहना चाहिए।

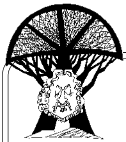

ज़रा सोचिये

❖ यदि आप भाहर के मेयर होते तो लोगों को रोज़गार देने के लिए क्या नीतियाँ अपनाते ?–

- क्या आप धन का मुद्रण करते और उसे खर्च करते?
- क्या आप बेरोज़गारों को अनुदान (खैरात) देना प्रारम्भ करते?
- क्या आप लोगों को गड्ढों को खोदने और फिर से उन गड्ढों को वापस भरने के नाम पर पैसे देते?
- क्या आप जानते हैं कि कुछ लोगों के अनुसार द्वितीय वि वयुद्ध अत्यधिक मंदी (Depression) का समाधान था?
- या आप आर्थिक स्वतन्त्रता को बढ़ावा देते ताकि लोग अपनी देखभाल स्वयं कर सकें?

❖ वस्त्र उद्योग में हुई वि ाल प्रगति को देखते हुए सोचें कि क्या ''खादी'' का द र्ान दे ा के लिए अच्छा है?

❖ औद्योगिक क्रान्ति कालीन उन ब्रिटि ा हस्त िल्पियों (Luddites) के विशय में कुछ अध्ययन व अनुसंधान करें जो यह मानते थे कि म ीनें गरीबों की दु मन हैं और इसीलिए ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति के दौरान कपड़ा बनाने वाली म ीनों को तहस–नहस कर देते थे।

9

गरीबी

द ाकों तक भारत में 'अर्थ ाास्त्र' का तात्पर्य गरीबी का अध्ययन रहा है। कुछ समय पहले तक कॉलेज में अर्थ ाास्त्र पढ़ाने की भाुरुआत ''गरीबी के दो ापूर्ण चक्र'' नामक सिद्धान्त (Theory of vicious circle of poverty) से की जाती थी। इस सिद्धान्त के अनुसार गरीबी को दूर नहीं किया जा सकता। गरीब लोग तथा गरीब राश्ट्र के लिए गरीब रहना नियति है। वास्तव में यह कोरी बकवास है। यदि यह सत्य होता तो संसार आज भी पाशाण युग में होता। जीवनियों (biography) का इतिहास 'गरीबी से अमीरी का सफर करने वाली कथाओं से भरा पड़ा है। हाँगकाँग और अमेरिका गरीब आप्रवासियों (immigrants) द्वारा ही बनाये गये। गरीब लोग कठोर परिश्रम करते हैं और अक्सर सफल होते हैं। अमीर लोग आलसी हो जाते हैं और विलासिता में फँस जाते हैं । यह गरीबी के कुचक्र नामक सिद्धान्त अब आई.सी.एस.ई. एवं सी.बी. एस.ई. बोर्ड के स्कूलों में पढ़ाया जाता है। ऐसी किताबों को, जिनमें ऐसे बकवास सिद्धान्त दिये गए हैं, तुरन्त हटा देना चाहिए।

अर्थशास्त्र गरीबी का अध्ययन नहीं है वरन् यह धन पैदा करने का अध्ययन है।

सन् 1776 में एडम स्मिथ ने ''एन इनक्वाइरी इन टू द नेचर

एण्ड कॉजेज ऑफ द वेल्थ ऑफ नेशन्स'' नामक पुस्तक लिखी। **एडम स्मिथ** ने धन के कारणों का अध्ययन किया और मुक्त बाज़ार के अनुयायी भी इसी का अध्ययन करते हैं।

भारत को गरीब दे ा कहा जाता है तथा गरीबी की समस्या को हल करने के लिए राजनैतिक कार्यवाही की बात की जाती है। गरीबी उन्मूलन के लिए नेताओं द्वारा करोंड़ों रूपया खर्च करने के बाद भी गरीबी समाप्त नहीं हो रही है। तो क्या नेताओं द्वारा की गयी इन कार्यवाहियों एवं खर्चों को जारी रहना चाहिए? आइये हम अपने आस–पास दिखाई देने वाले गरीबी के लक्षणों (जैसे–भिखारी) पर नजर डालते हैं और उनकी स्थिति को थोडा़ पास से जानने की कोि ा ा करते हैं।

कभी आप दिल्ली एवं देहरादून के बीच बस या कार से यात्रा करें तो पाएंगे कि रुड़की से आगे सड़क एक घने जंगल से गुजरती है। सड़क के इस टुकड़े में सड़क के दोनों तरफ हजारों बंदर इकट्ठा रहते हैं और उन हनुमान भक्तों का इन्तजार करते रहते हैं, जो उन्हें खाना खिलायें। लेकिन क्या इससे सिद्ध होता है कि जंगल निर्धन एवं संसाधन रहित है?

या यह प्रेरकों (incentives) की भूमिका को प्रदि ति करता है? (इन्सेन्टिव – जिसे मनोवैज्ञानिक धनात्मक पुनर्बलन भी कहते हैं)। दरअसल बंदर यह सीख चुके हैं कि सड़क के आस–पास इकट्ठा रहकर भोजन प्राप्त करना, जीवित रहने का (अस्तित्व में बने रहने का) आसान तरीका है और यही बात भिखारियों के सन्दर्भ में भी सत्य है।

बहुत पहले **लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स एण्ड पॉलिटिकल साइन्स** के विकास अर्थ ाास्त्री ने तथ्यों की छानबीन कर, निश्कर्श निकाला कि भारत एवं पाकिस्तान के भाहरों एवं कस्बों में फैली हुई भिखारियों की संख्या, गरीबी का सूचक नहीं है, बल्कि यह दोनों ही दे ाों में पूर्व प्रधान (Pre-dominant) सम्प्रदायों का परिणाम है। हिन्दू एवं मुसलमान दोनों ही सोचते हैं कि गरीब को भिक्षा देने से वे पुण्य कमायेंगे। इन दे ाों में पारसी, जैन और सिख भिखारी नहीं मिलते क्योंकि ये सम्प्रदाय पुण्य कमाने के अन्य तरीकों में वि वास करते हैं तथा अपनी मदद स्वयं करने को प्रोत्साहित करते हैं।

भारत में बच्चों को अंग–भंग करके भिक्षावृत्ति में धकेलने के विरोध में कानून है। इस प्रकारके कानून का अस्तित्व, इस हेय (घटिया) व्यवस्था /कृत्य की उपस्थिति को सिद्ध करता है।

इस घटिया कृत्य की उपस्थिति के कारण ही अधिकाँ ा भिखारी भयानक रूप से अपंग हैं। निगम और पुलिस के अधिकारियों की छोटी–मोटी चोरी की आदत, भिक्षावृत्ति के इस कृत्य को बढ़िया कमाई के साधन के रूप में देखती है।

'भिक्षावृत्ति एक व्यवसाय है और यह सिर्फ एक बात सिद्ध करता है कि हमें ''दान'' या ''भिक्षा'' देने के स्वरूप के बारे में फिर से सोचना चाहिए। हमें भिखारियों को भीख देने की बजाय प्रतियोगी निजी सहायता समूहों (private charities) को प्रोत्साहन देना चाहिए।

स्वावलम्बन या स्व–सहायता (self-help) एक नैतिक सिद्धान्त है, जिसका मानना है कि बाहर से ली गई मदद, व्यक्ति को कमजोर बनाती है। बाह्य मदद केवल अत्यधिक मजबूरी की स्थिति में लेनी चाहिए और वह भी निजी मददकर्ताओं (सहायता समूहों) या दोस्तों व परिवार से।

इसलिए चोरों (नेताओं) को कर से प्राप्त धन को गरीबों की मदद के नाम पर खर्च करने की अनुमति देने का कोई कारण नहीं है। परस्पर प्रतियोगी निजी सहायता समूह ही एकमात्र सर्वोत्तम उपाय है।

यदि आप वास्तव में उपयोगी तरीके से गरीबों की मदद करना चाहते हैं तो अपने धन को कैसे खर्च करेंगे –

- समाजवादी राज्य को कर अदा करके ?
- या गली नुक्कड़ के प्रत्येक भिखारी को भीख देकर ?
- या गरीबों की सहायता के लिए बनी ''मदर टेरेसा मि ानरी'' में अपना सहयोग देकर ?

स्वावलम्बन (Self-help)

ध्यान रहे कि भारत में कोई सिख या पारसी भिखारी नहीं है। सिख स्वावलम्बन (Self-help) का पालन करते हैं एवं इसे प्रोत्साहित करते हैं। गुरुद्वारे के लंगर में निः ुल्क भोजन प्राप्त करने वालों को स्वयं बाहर जाकर, कार्य करके, अपनी जीविका प्राप्त करके, अन्य किसी दिन, दूसरों के लिए लंगर में सहयोग करने हेतु प्रेरित किया जाता है।

सैमुअल स्माईल्स द्वारा लिखी पुस्तक **सेल्फ–हेल्प** (self-help)[7] को

[7] इस पुस्तक का भारतीय संस्करण ''लिबर्टी इंस्टीट्यूट नई दिल्ली'' में मौजूद है।

प्रत्येक भारतीय को पढ़ना चाहिए। 1860 में लिखी इस पुस्तक का कुछ ही वर्शो में तुर्की, अरबी, एवं जापानी आदि भाशाओं में अनुवाद किया गया तथा इसकी लाखों प्रतियाँ वि वभर में बिकीं। यह विक्टोरिया इंग्लैण्ड के प्रत्येक घर में बाइबिल के बाद दूसरे नम्बर पर सबसे ज्यादा पाई जाने वाली पुस्तक थी और इस पुस्तक ने जापानियों में यह दृढ़ वि वास पैदा किया कि यदि वे न्यूनतम सरकारी हस्तक्षेप के साथ, कर्तव्यनिश्ठ होकर कठोर परिश्रम करें तो जापान भोश संसार के साथ बराबरी में खड़ा हो सकता है।

यह पुस्तक व्यक्ति के स्वयं में वि वास करने को बढ़ावा देती है। जो व्यक्ति स्वयं में वि वास रखता है, केवल वही व्यक्ति स्वालम्बन का अनुपालन करता है और स्वयं की मानवीय क्षमताओं का अधिकतम दोहन करने का प्रयास करता है। कल्याणकारी राज्य की धारणा इस विचारधारा को प्रोत्साहित नहीं करती है बल्कि यह गरीब को ऐसे असहाय के रूप में देखती है जिसे सरकार से भिक्षा की आव यकता है। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री **स्व. श्री राजीव गांधी ने स्वयं कहा था** – कि **गरीबी उन्मूलन** योजनाओं पर खर्च किये जाने वाले धन का 80 प्रति ात अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँचता है। यह बीच में ही चोरतंत्र (Kleptocracy) द्वारा निगल लिया जाता है।

स्वावलम्बन (Self-help) एक नैतिक सिद्धान्त है, जिसके अनुसार बाहर से ली जाने वाली सहायता व्यक्ति को कमजोर बनाती है। केवल बहुत आव यक होने पर ही बाहर से मदद ली जानी चाहिए और वह भी निजी सहायता समूहों या मित्रों व परिवार से। हम सभी में सहानुभूति का नैतिक भाव तथा उदारता का सद्गुण (virtue of generosity) होता है। इसीलिए किसी को भी परे ानी में देखकर हम सभी को सहानुभूति होती है और हम उदारभाव से दान देने के इच्छुक हो जाते हैं। यही कारण है कि भिखारियों की संख्या बढ़ती जा रही है। ये जनता की सहानुभूति एवं उदारता (generosity) के जीवंत एवं दिनों–दिन वृद्धि कर रहे सबूत (testament) हैं। इनका अस्तित्व यह सिद्ध करता है कि गरीबों की मदद के लिए सरकार के विभिन्न करों की अपेक्षा सुसंगठित एवं सुनिर्दे ात निजी सहायता समूह बेहतर उपाय हैं। तथा गैर संगठित तरीके से व्यक्तिगत रूप से भिक्षा देकर भिक्षावृत्ति को बढ़ाने की अपेक्षा भी ये सहायता समूह कहीं बेहतर हैं। मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था में गरीबों की मदद के लिए सरकार के योगदान की कोई आव यकता नहीं है।

इसके बजाय इस विचार के प्रचार–प्रसार की आव यकता है कि सम्पन्नता आर्थिक स्वतन्त्रता (economic freedom) से आती है। आज

बाज़ार अर्थव्यवस्था की छोटी से छोटी व्यवस्था (व्यक्ति या इकाई) भी आर्थिक नियंत्रणों के अधीन है तथा अफसर ाही की ि ाकार है। परिवहन उद्योग भी स्वतन्त्र नहीं है। विनिमय नियंत्रण प्रत्येक भारतीय को भूमंडलीकृत वि व अर्थव्यवस्था में मुक्त रूप से भाग लेने में अक्षम बनाता है। भारतीय कृशि भी अत्यधिक सरकारी प्रतिबन्धों की ि ाकार है।

यदि ये सभी नियंत्रण समाप्त कर आर्थिक स्वतन्त्रता प्रदान की जाए तो दे ा ज्यादा तेजी से सम्पन्न होगा। केवल बहुत थोड़े से लोग गरीब होंगे, जिनकी मदद प्रतियोगी निजी सहायता समूहों द्वारा की जा सकेगी। भिक्षावृत्ति को समाज द्वारा ही हतोत्साहित किया जायेगा। सरकार हमसे कम से कम कर लेगी तथा धन को सर्वोत्तम सार्वजनिक सम्पत्तियों वि ोश कर सड़कों व कानून –व्यवस्था में निवे ा करेगी। ये सब बातें दे ा को *400 सिंगापुर दृश्टिकोण* के अनुरूप भीघ्रता से भाहरीकरण की ओर अग्रसर करेंगी। ग्रामीण अधिकाधिक मात्रा में भाहर में जाकर बड़े स्तर के श्रम विभाजन में भाग लेंगे। इस तरह जमीन वि ोश पर ज्यादा जनसंख्या का दबाव नहीं होगा तथा भारतीय कृशि ज्यादा सक्षम हो सकेगी। भूमि के पुनर्निर्माण तथा पुनर्वितरण की आव यकता नहीं रहेगी। सरकार को सिर्फ सम्पत्ति के अधिकारों की ऱक्षा पर ध्यान रखना होगा।

हमें लोगों को स्वतन्त्रता पूर्वक धन पैदा करने के लिए प्रोत्साहित कर, स्वावलम्बन के नैतिक सिद्धान्त को बढ़ावा देना चाहिए। आज हम सिर्फ निर्भरता को प्रोत्साहित कर रहे हैं जो कि भारतीयों की क्षमतानुरूप भारत के पूर्ण विकास में बाधक है। यही निर्भरता चोरतंत्र (तथाकथित लोकतन्त्र) को गरीबों की नीतियों के सन्दर्भ में उपदे ा देने का मौका देती है जबकि ये नीतियाँ कभी भी अर्थपूर्ण तरीके से गरीबों की सहायता नहीं कर सकतीं। ऐसी सभी नीतियों को समाप्त किया जाना चाहिए। रा ान की दुकानों व छूटों की बजाय मुक्त व्यापार, स ाक्त मुद्रा (sound money), सार्वजनिक सम्पत्ति, कानून–व्यवस्था व पूर्ण आर्थिक स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

स्वतन्त्रता, लोगों को बिना रुकावट के आर्थिक उपलब्धियों को प्राप्त करने के योग्य बनाती है। हमें स्वावलम्बन (self-help) के नैतिक सिद्धान्त की आव यकता है। ''मैं अपनी मद्द स्वयं करता हूँ तथा मैं ऐसा करने के लिए स्वतन्त्र हूँ। ''मैं दूसरों पर निर्भर नहीं हूँ, और वि ोशकर सरकार पर तो बिल्कुल नहीं'' – यदि प्रत्येक भारतीय ऐसा सोचे और आर्थिक रूप से स्वतन्त्र हो, तो कहीं गरीबी नहीं रहेगी।

ज़रा सोचिये

- यदि ''गरीबी के कुचक्र'' (vicious circle of poverty) नामक सिद्धान्त असत्य है तो भारत की आम गरीबी से क्या पता चलता है?
- भारत एक सम्पन्न राश्ट्र कैसे बन सकता है?
- हम गरीबों की मदद सार्थक तरीके से कैसे कर सकते हैं?
- यदि सभी ज़रूरतमंद लोगों को सरकार से अनुदान (dole) प्राप्त हो तो यह व्यवस्था परिवारों को मजबूत करेगी या कमजोर करेगी? जरा गहराई से सोचिए कि यदि हम सभी को सरकार से अनुदान (dole) प्राप्त हो, तो क्या हमें परिवार व मित्रों की आव यकता होगी?

10 पर्यावरण

मलिन बस्तियाँ (स्लम) व किराया नियंत्रण

पिछले अध्याय में हम ये जान चुके हैं कि भाहरों में दिखाई पड़ने वाले भिखारी व भिक्षावृत्ति गरीबी के साक्ष्य नहीं हैं। आइए अब हम एक और बिन्दु पर गौर करते हैं, जो भाहरी पर्यावरण पर एक धब्बा है – स्लम (मलिन बस्तियाँ)।

गौरतलब है कि काठमांडू (नेपाल) में कोई मलिन बस्ती (स्लम) नहीं है, जबकि वहाँ की प्रति व्यक्ति आय भारतीय भाहरों की अपेक्षा कम है। **स्लम** के अस्तित्त्व का एक मात्र कारण **किराया नियंत्रण** (rent control) है। काठमांडू में किराया नियंत्रण नहीं है। अतः सम्पन्न लोग मकान बनाते हैं और ऐसे गरीबों को, जो स्वयं मकान बना या खरीद नहीं सकते, किराये पर देते हैं। चूँकि भारत में किराया नियंत्रण है अतः संपन्न लोगों को मकान बनाकर, किराये पर देने में कोई फायदा नहीं दिखता।

गरीब लोग सामान्यतया सम्पति खरीदते नहीं हैं बल्कि किराये पर लेते हैं। वे सम्पत्ति खरीद नहीं सकते। अतः उनके लिए 'किराये के मकान सम्बन्धी बाजार व्यवस्था होनी चाहिए। बाजार द्वारा किराये के मकानों की अनुपलब्धता के कारण वे राजनैतिक रूप से प्रायोजित मलिन बस्तियों के स्वामियों के पास जाते हैं और यह प्रक्रिया राजनीति के अपराधीकरण को बढ़ावा देता है।

''आर्थिक बुराई (Evil) राजनैतिक बुराई को पैदा एवं पोशित करती है।''

किराया नियंत्रण आर्थिक बुराई (evil) क्यों है? क्योंकि यह **सम्पत्ति के अधिकार** का घोर उल्लंघन है। सम्पत्ति का मालिक भूस्वामी होता है। यदि किरायेदार कानूनी तरीके से इसे भूस्वामी से छीन सकता है तो इसका मतलब है कि कानून चोरी को बढ़ावा दे रहा है। **यह कानून एक विधिसम्मत लूट है।**

यदि लूट (plunder) वैध हो तो बाजार संचालित नहीं हो सकता। 'सम्पत्ति का अधिकार ' बाजारों की नैतिकता (morality of markets) के लिए मूलभूत आव यकता है। जब तक यह स्पश्ट न हो कि क्या मेरा है और क्या मेरा नहीं है, तब तक व्यापार तो दूर वस्तु–विनिमय (barter) भी सम्भव नहीं है। यह बिल्कुल स्पश्ट समझ लेना चाहिए कि जब तक भूस्वामी की सम्पत्ति को हड़प लेना वैध है, तब तक किसी भी किराया–बाजार (rental market) का उदय संभव नहीं है।

किराया नियंत्रण एवं किरायेदारी कानूनों के समाप्त होने से भाहरी पर्यावरण से एक बड़ा धब्बा हट जायेगा।

आइये अब 'स्वच्छ वायु ' की समस्या की ओर अग्रसर होते हैं।

स्वच्छ वायु

हमारे भाहरों की वायु अनेकों प्रकार के कारणों से स्वच्छ नहीं है। जिसमें सबसे प्रमुख अक्षम व अयोग्य वाहन तथा अकु ाल यातायात प्रबन्धन हैं। यहाँ तक कि एक साइकिल रिक ाा भी प्रदूशण का कारण बनता है – जब यह बस के मार्ग में आकर उसे मुख्य यातायात में खिसकने के लिए बाध्य करता है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक अन्य वाहन चालक को गियर बदलने पड़ते हैं, फलस्वरूप वायु प्रदूशित होती है। साइकिल रिक ाा अपनी अक्षमता का बोझ अन्य वाहन स्वामियों के ऊपर डाल देते हैं। उन्हें वाहन धीमे करने पड़ते हैं, गियर बदलने पड़ते है। इससे वायु प्रदूशण के साथ–साथ धन की भी हानि होती है और यह सिर्फ साइकिल रिक ाा की अक्षमता के कारण होता है। मुक्त व्यापार इसका इलाज है।

पुराने (second hand) वाहनों के मुक्त व्यापार से भारतीय परिवहन उद्योग एक नये युग में प्रवे ा करेगा। यदि इन पुराने वाहनों को कम आयात भाुल्क पर अनुमत किया जाय तथा इस कर को सड़क निर्माण के मद में प्रयुक्त

किया जाय तो साइकिल रिक ा, ऑटो रिक ा व समाजवाद के अन्य प्रदूशक स्मृति चिन्ह (polluting relics of socialism) कालातीत हो जायेंगे। अच्छी सड़कों व अच्छे यातायात परिचालन से प्रदूशण कम होगा व वायु ज्यादा स्वच्छ होगी।

इसके अलावा वायु को स्वच्छ रखने में कर का प्रयोग भी किया जा सकता है। यदि हम ऐसे वाहनों पर जो ज्यादा प्रदूशण फैलाते हैं, ज्यादा कर लगाएं तथा उन तकनीकियों वाले वाहनों को, जो प्रदूशण मुक्त हैं, कर मुक्त कर दें तो लोग प्रदूशण मुक्त प्रौद्योगिकी की ओर प्रेरित होंगे व वायु स्वच्छ रहेगी।

सार्वजनिक सम्पत्ति होने के कारण यातायात प्रबन्धन, कानून व्यवस्था का भाग है तथा इसमें सामूहिक प्रयास की आव यकता है। समाजवादी भारत में सड़कों व यातायात प्रबन्धन, दोनों को, अनदेखा कर दिया गया है। अच्छी सड़कें, वैज्ञानिक तरीके से यातायात प्रबन्धन, पुराने वाहनों का मुक्त व्यापार एवं कर मुक्त प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देने के लिए कर की व्यवस्था करने से हम अपने भाहरों में ज्यादा बेहतर वायु प्राप्त कर पायेंगे।

स्वच्छ जल

स्थिति पर ज़रा गौर कीजिए – प थ्वी का 70 प्रति ात भाग जल है, फिर भी जल का संकट है। पृथ्वी में बहुत कम मात्रा में तेल है, परन्तु डीजल व पेट्रोल बहुतायत में उपलब्ध हैं। इस जिज्ञासु स्थिति को स्पशट किया जा सकता है ?–

इसका केवल एक कारण है कि तेल के लिए बाज़ार है जबकि जल के लिए कोई बाज़ार नहीं है। राज्य सम्पूर्ण जल का स्वामी है एवं इसे अपने अनुसार वितरित करता है। पंजाब के किसान निः ुल्क जल पाते हैं जिससे वे चावल (जिसके लिए 21 बार सिंचाई की आव यकता होती है) उगाते हैं जबकि दिल्ली में जल की कमी है, यद्यपि वहाँ लोग जल के लिए भुल्क देने को तैयार हैं।

> पृथ्वी का 70 प्रति ात भाग जल है, फिर भी जल की कमी है। दूसरी ओर प थ्वी में बहुत कम मात्रा में तेल है परन्तु, डीजल व पेट्रोल बहुतायत में उपलब्ध है।

मैं एक बार देहरादून में था तो मैंने पानी की कमी की ि ाकायतें सुनीं। देहरादून के एक तरफ गंगा तो दूसरी तरफ यमुना बहती है, तो फिर इस भाहर में पानी क्यों नहीं है? उत्तर प्राप्त करने के लिए – देहरादून से 40 किमी0 दूर

डाकपत्थर नाम के सिंचाई विभाग के कस्बे में जाइये। वहाँ आप पायेंगे कि सरकार ने नदी के पानी पर बाँध बनाया हुआ है तथा इससे पंजाब के किसानों को निः ाुल्क जल की आपूर्ति की जाती है। सुन्दर प्राकृतिक नजारों के बीच में स्थित होने के बाद भी डाकपत्थर एक भूतिया भाहर लगता है क्योंकि सिंचाई विभाग दिवालिया है और जल से कोई लाभ नहीं कमाता। देहरादून वासी जल के लिए भाुल्क अदा करेंगे लेकिन **सरकार** जल के लिए बाज़ार व्यवस्था में रूचि लने की इच्छुक ही नहीं।

पुनः, हल है – **सम्पत्ति का अधिकार**।

यदि नदियों के जल एवं भू जल में सम्पत्ति का अधिकार होता, तो हम अतिरिक्त जल को बाज़ार में बेच सकते थे। संभव था कि नदी के पानी को कोई पंजाब में खरीदता और दिल्ली में बेचता। पंजाब के किसान भी भाायद इस जल से चावल पैदा करने के बजाय बेचना पंसद करते (जबकि जल निः ाुल्क उपलब्ध ा नहीं होता।)

नर्मदा बाँध की समस्या ने भी यही स्पश्ट किया कि बड़े बांध सरकार द्वारा विस्तारित (promoted) तकनीकियाँ हैं। आदिवासियों व जनजातियों का नदी के जल पर **सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार** नहीं है और सारा पानी सरकार द्वारा चुराकर उन राज्यों को दे दिया जाता है, जिनको सरकार की नजरों में अधि ाक आव यकता है। यदि जल पर सम्पत्ति का अधिकार होता तो बांध – स्वामियों को जल के लिए आदिवासियों को भाुल्क अदा करना पड़ता और फिर जिन लोगों को जल की आव यकता होती, उन्हें बेचना पड़ता। निः ाुल्क जल की अनुपलब्धता बड़े बाँधों को लाभहीन बना देती। यह अनुपलब्धता पानी से नमक दूर करने वाले संयंत्रों को लाभकारी बना देती तथा फिर हमें बड़े बाँधों की जगह समुद्र के तटों पर सैकड़ों ऐसे संयंत्र दिखाई देते जो बड़े–बड़े पाइपों की सहायता से प्रत्येक स्थान पर भाुल्क के बदले स्वच्छ एवं पेय जल की आपूर्ति कर रहे होते।

आवास, वायु एवं जल – तीनों में से किसी में भी सरकार के हस्तक्षेप की आव यकता नहीं है।

आव यकता है मुक्त व्यापार की तथा सम्पत्ति के अधिकारों को प्रभावी बनाने की ।

विलुप्त प्रजातियाँ

ध्यान दें कि बाघों को सरकारी संरक्षण की आव यकता है, जबकि

बकरियों, मुर्गों, सुअरों व अन्य घरेलू प ुाओं को इसकी आव यकता नहीं है। वे बिना विलुप्तता के खतरे के जीवित हैं और रहते हैं क्योंकि बाज़ार व्यवस्था में उन्होंने अपना स्थान बना लिया है। वे ि ाकार के लिए नहीं हैं, बल्कि उनकी देखरेख सम्पत्ति के अधिकार से होती है। कोई न कोई उनका मालिक होता है। यद्यपि मनुश्यों के खाने के लिए वे बहुतायत में मारे जाते हैं परन्तु उनके अस्तित्व को कोई खतरा नहीं है। ठीक इसी तरह फलों व सब्ज़ियों की वह प्रजातियाँ जो बाज़ारीय अर्थव्यवस्था में प्रयुक्त होती हैं, बिना किसी भय के अस्तित्व में रहती हैं। यदि दुर्लभ पौधों का प्रयोग दवा बनाने की कम्पनियों द्वारा किया जा सकता या उन्हें हम अपने घरों व बगीचों को सजाने में प्रयोग कर सकते, तो वे भी अस्तित्व में रहते।

एमू (emus) व भुातुरमुर्ग आज पोल्ट्री फार्म के कारण अस्तित्व में हैं। मगरमच्छों को विलुप्त होने से इसीलिए बचाया जा सका है क्योंकि अब उनके भी फार्म हैं। इस प्रकार के विचार विभिन्न प्रजातियों को अस्तित्व में रखने के लिए सरकार द्वारा अभी तक किए प्रयासों (व्यापार पर रोक तथा सरकारी नियंत्रण में सैंक्चुरीज़ का संचालन) से बेहतर हैं। ध्यान रहे कि बीहड़–जंगल (wilderness) भी ऐसी उपयोगी वस्तु है, जिसे पयर्टन, प्रकृति के अध्ययन एवं फोटोग्राफी के लिए बेचा जा सकता है। यदि ऐसे प ु फार्म हों, जो प्रजातियों का वं ापालन करते हों तथा मनोरंजक ि ाकार की अनुमति देते हों, तो ि ाकार को एक क्रीडा (खेल) बनाया जा सकता है। संयुक्त राश्ट्र अमेरिका में एक निजी ''प्रकृति संरक्षण संगठन'' है जो अपने सदस्यों से भुाल्क लेता है और बदले में लाखों एकड़ जंगल खरीदता है। इस प्रकार यह बीहड़ व जंगलों की देखभाल अपने सदस्यों की निजी सम्पत्ति की तरह करता है। इस प्रकार जो वन सम्पदा को महत्व देते हैं, वे अपने धन का निवे ा इसमें करते हैं। दूसरी तरफ जब सरकार जंगलों का अधिग्रहण कर लेती है तो गरीब से गरीब को, यहाँ तक कि पीढ़ियों से जंगल में रह रहे आदिवासियों को भी, भुाल्क अदा करना पड़ता है।

पुनः, सरकारी अभयारण्यों में एक अन्य आर्थिक समस्या पैदा होती है, जिसकी ओर हम अब अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं –

साझे की त्रासदी (The Tragedy of the Commons)

यदि एक साझा (common) घास का मैदान है जिसके ऊपर किसी व्यक्ति वि ोश का मालिकाना हक नहीं है और कुछ गड़रिये हैं, जो अपने भेड़ें चराते हैं, तो सिद्धान्ततः यह पूर्वकथन किया जा सकता है कि वे अपनी भेड़ों को अपने तर्कानुसार जरूरत से ज्यादा घास चरायेंगे और अन्ततः उस मैदान को

नश्ट कर देंगे। ऐसा इसलिए होगा क्योंकि इन गड़रियों में से प्रत्येक सोचेगा कि यदि उससे अपनी भेड़ों को ज्यादा घास नहीं चराई तो दूसरे गड़रिये की भेड़ें घास चर जायेंगी। इस प्रकार का तार्किक व्यवहार उनमें से प्रत्येक गड़रिये का होगा और अन्ततः घास का मैदान समाप्त हो जायेगा।

एक दूसरा उदाहरण लीजिए – कल्पना कीजिए कि एक वि ाल तालाब है जिसमें बहुतायत की मात्रा में मछलियाँ हैं। इसके निकट ही कुछ मछुआरे रहते हैं। यदि तालाब का कोई मालिक नहीं है और सभी मछुआरों में मछलियों के लिए प्रतिस्पर्धा है, तो सिद्धान्तानुसार ये मछुआरे अपने तार्किक ढंग से मछलियों को नश्ट कर देंगे। आइये देखते हैं – कैसे?

कल्पना कीजिए कि मछुआरे के जाल में एक छोटी मछली (मछली का बच्चा) फँसती है, तो आद ा रूप में उसे इस मछली को वापस तालाब में फेंक देना चाहिए परन्तु उपरोक्त स्थिति में वह ऐसा नहीं करेगा क्योंकि वह सोचेगा कि यदि उसने यह मछली नहीं पकडी़ तो कोई और मछुआरा इसे पकड़ लेगा। इस प्रकार प्रत्येक मछुआरे के इस तरह सोचने से जल्दी ही तालाब मछलियों से खाली हो जायेगा और इसका साधारण सा कारण है कि यह तालाब बिना मालिक का एक साझा संसाधन है। पर्यावरण की देखभाल के लिए **सम्पत्ति का अधिकार** आव यक है। यदि हम जंगल, जल व किराये हेतु मकान आदि पर अन्य की तरह सम्पत्ति का अधिकार स्थापित कर दें तो पर्यावरण बेहतर ढंग से सुरक्षित रहेगा क्योंकि प्रत्येक संकटमय अवस्था वाली वस्तु – जैसे – मकान, पीने का पानी, पौधों एवं जानवरों की प्रजातियाँ, वन एवं समुद्री भौल भित्ती (continental shelf) को बाजार की अर्थव्यवस्था में एक नि चत स्थान मिल जायेगा एवं उनका अस्तित्व बना रहेगा। वर्तमान में ये सभी **साझे की त्रासदी** से पीड़ित हैं।

यदि सम्पत्ति के अधिकार प्रभावी हैं तो बाजार पर्यावरण के लिए अच्छा है।

सभी पर्यावरणीय समस्याओं का कारण साझे की त्रासदी है। जो भी संपत्ति वायु, नदी, जंगल या बाघ की तरह साझा होती है वही त्रासदी का ि ाकार होती है और प्रदूशित होती है या नश्ट होती है। सम्पत्ति का अधिकार इसका निदान है। या तो आप साझा सम्पत्ति को बेच सकते हैं या इसे प्रयोग के लिए भाुल्क का प्रावधान कर सकते हैं। उदाहरण के लिए – किसी उद्योग की चिमनी से निकलने वाले नुकसानदेह धुएं या नदी में विसर्जित किये जाने वाले स्राव के लिए भाुल्क का प्रावधान किया जा सकता है। यह भाुल्क या कर इन लोगों को

प्रदूशण मुक्त प्रौद्योगिकी के प्रयोग की ओर प्रेरित करेगा।

इस प्रकार साझे की त्रासदी का निवारण किया जा सकता है।

''प्रदूशणकर्त्ता पर भाुल्क'' का सिद्धान्त

कल्पना कीजिए कि आप 'बनारस' के राजा हैं और बनारस के सभी नागरिक बनारसी पान के भाौकीन हैं। वे पान चबाते हैं तथा सामान्यतया इसकी पीक को सभी स्थानों पर थूकते रहते हैं। यह प्रदूशण की समस्या है। यह **साझे की त्रासदी** की स्थिति भी है क्योंकि वे सभी ऐसे सार्वजनिक स्थानों पर थूकते हैं, जिनका कोई मालिक नहीं है। इस समस्या का समाधान आप कैसे करेंगे?

पहला तरीका है कि पान को प्रतिबंधित कर दिया जाय। लेकिन जो लोग स्वतन्त्रता में वि वास रखते हैं, वे प्रतिबंधों में वि वास नहीं रखते। प्रतिबंध ा से स्वतन्त्रता का हनन होता है। इसलिए हमें कोई बेहतर तरीका सोचना चाहिए।

''प्रदूशण फैलाने वालों पर भाुल्क'' का सिद्धान्त कहता है कि जो लोग पान की पीक सार्वजनिक स्थानों पर थूकें, उन पर कर लगाना चाहिए। यदि इस 'कर' को लागू किया जाय (और वसूल किया जाय) तो क्या होगा?

कुछ ही दिनों में पान चबाने वाले लोग पीकदान के साथ चलेंगे। वे मूल आर्थिक तार्किकता से पर्यावरण सहयोगी तकनीक को अपनाने के लिए बाध य होंगे।

इसी प्रकार यदि वाहनों पर उनके प्रदूशण फैलाने के स्तरानुसार 'कर' लगाया जाय तो जो समाजवाद के स्मृति चिन्हों – **पुराने वाहनों** – का प्रयोग करते हैं, यूरो–III जैसी प्रदूशण मुक्त तकनीकियों को प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित होंगे। ऐसी प्रदूशण मुक्त प्रौद्योगिकी को कर से मुक्त करना चाहिए।

''प्राकृतिक संसाधनों की कमी '' का हौआ

जब हम जैसे लोग यह कहते हैं कि – जनसंख्या सम द्धि का कारण है , केवल मनुश्य ही ऐसी प्रजाति है जो धन पैदा कर सकती है और नक ो पर अंकित प्रत्येक बिन्दु, जनसंख्या की दृश्टि से सघन है और ज्यादा सम्पन्न है, तो उनके जैसे (तथाकथित समाजवादी) लोग *प्राकृतिक संसाधन की कमी* की बात करते हैं। उनका तर्क है कि पृथ्वी पर संसाधन सीमित हैं तथा यदि ज्यादा लोग होंगे, तो ये जल्दी समाप्त हो जायेंगे।

प्राकृतिक संसाधनों की कमी की समस्या का ***जूलियन साइमन*** ने गहनतापूर्वक अध्ययन किया। उसने दीर्घकालिक मूल्य सम्बन्धी प्रवृत्तियों का अध्ययन किया और इससे बड़े रोचक परिणाम निकलकर आये कि वेतन एवं मुद्रास्फीति की तुलना में सभी प्राकृतिक संसाधनों की कीमत पिछले दो सौ सालों में लगातार गिरी है, जबकि इस दौरान पृथ्वी पर मनुश्यों की जनसंख्या बढ़ कर चार गुनी हो गई है।

यह सचमुच एक रोचक बात है। जो लोग ज़्यादा जनसंख्या का मतलब प्राकृतिक संसाधनों पर बोझ बताते हैं, यदि उनकी बात सही होती तो इस दौरान सभी प्राकृतिक संसाधनों की कीमत घटने की बजाय बढ़नी चाहिए थी, लेकिन कीमतें सचमुच गिर रही थी और वे भी अवि वसनीय तरीके से। उदाहरण के लिए पिछले 200 वर्शों में ताँबे की कीमतें देखें।

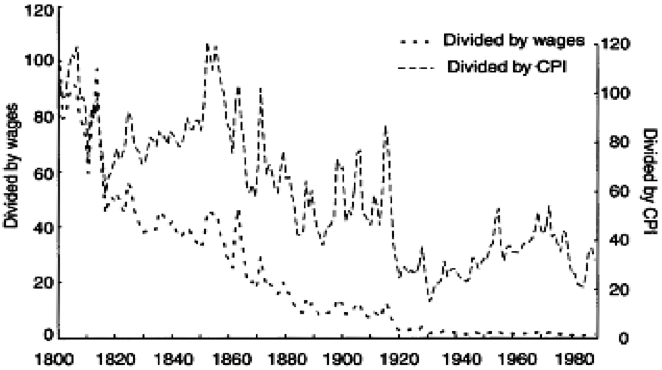

Figure 1-1. The Scarcity of Copper as Measured by Its Prices Relative to Wages and to the Consumer Price Index

Simon, 1981

ताँबा बहुतायत में प्रयोग होने वाली धातु है। यह प्रकृति में एक नि चत मात्रा में ही उपलब्ध है। मनुश्यों की जनसंख्या चौगुनी हो चुकी है। तो फिर ताँबे की कीमतों में गिरावट का क्या स्पश्टीकरण है? ऊपर जैसे अनेकों ग्राफों का अध्ययन करके **जूलियन साइमन** ने अद्भुत निश्कर्श निकाला कि **''ज्यादा मनुश्यों का अर्थ है ज्यादा संसाधन, न कि कम।''**

इसी आधार पर 1980 में जूलियन साइमन ने एक ऐसा कार्य किया जो अध्यवेत्ता के लिए नई बात थी – उसने अपने इस निश्कर्श के आधार एक भार्त रखी। जिसके अनुसार – कोई 5 प्राकृतिक संसाधन चुनिए व 200 डॉलर का प्रत्येक संसाधन खरीदकर एक हजार डालर की एक टोकरी बनाइये। तथा फिर

1990 में यानि दस साल बाद उस टोकरी की कीमत पुनः पता कीजिए। यदि टोकरी का मूल्य बढ़ा, तो आप जीते और यदि कम हुआ, तो जूलियन साइमन विजयी होंगे।

''द पॉपुले ान बॉम्ब'' नामक पुस्तक के लेखक **पॉल अरलिच** ने जूलियन की भार्त स्वीकार की और 576.07 डालर गँवाए। वह संयुक्त टोकरी जो 1980 में 1000 डालर की थी, 1990 में मात्र 423.93 डॉलर की रह गई। अरलिच ने जो पाँच प्राकृतिक संसाधन चुने थे, वे थे – ताँबा, टंगस्टन, क्रोम, निकिल एवं टिन। ये सभी अत्यधिक मात्रा में प्रयोग होते हैं। फिर इनकी कीमतें इतनी कैसे गिरीं?

पुनः, कारण है – ***वैचारिक मतभेद***। अरलिच एक जीव विज्ञानी हैं, जिनका सीधा सा सिद्धान्त है कि संसार में सीमित संसाधन हैं और यदि मनुश्यों की संख्या ज्यादा बढ़ेगी तो संसाधन कम होते जायेंगे। जबकि जूलियन साइमन एक अर्थ ास्त्री थे। उन्होंने दीर्घकालिक मूल्य – प्रवृत्तियों का अध्ययन किया। उनकी द श्टि में पृथ्वी अथाह संसाधनों से युक्त एक वि ाल ग्रह है। और संसाध ान तभी अस्तित्व में आते हैं, जब मनुश्य उन्हें प्रयोग करते हैं। इस प्रकार यदि मनुश्य ज़्यादा हैं तो संसाधन भी ज़्यादा होंगे। मनुश्य ही भा ा वत संसाधन हैं। वास्तव में, यह भी सत्य है कि बे ाक पिछले 200 वर्शों में मनुश्यों की जनंसख्या चार गनुी हो गयी है परन्तु उनकी आय का मूल्य भी बढ़ा है। सभी प्राकृतिक संसाधनों की कीमतों में गिरावट हुई है परन्तु मनुश्य का मूल्य बढ़ा है।

प्राकृतिक संसाधनों की कमी के सन्दर्भ में दिये जाने वाले तर्क की भीशण गलतियों को समझने के लिए आइये ऊर्जा के एक स्रोत – तेल – का उदाहरण देखते हैं। तेल की कीमतें कृत्रिम तरीके से बढ़ी हैं क्योंकि एक उत्पादक संघ इसकी आपूर्ति में कटौती करता है। अन्यथा इसकी कीमतें भी कम हुई होतीं। क्या यह 'ओपेक' (OPEC) के लिए बुद्धिमत्तापूर्ण है? फिर भी इस सबके बावजूद भी, जबकि तेल की कीमतें बढ़ रही हैं तो जो लोग विकल्प की खोज करते हैं , अर्थ ास्त्र उनके साथ है जेनेवा मोटर भाो के दौरान फ्यूल सैल (fuel–cell) कार का प्रद िन किया गया। यह प्रौद्योगिकी एक द ाक में ही अपनी उपस्थिति दर्ज करा देगी। जनरल मोटर्स तो घोशणा कर चुकी है कि सन् 2006 तक वह कार्यालयों एवं घरों में प्रयोग के लिए फ्यूल सैल (fuel–cell) का उत्पादन भाुरू कर देगी। तेल की समाप्ति से काफी पहले ही मानव सभ्यता इसके सस्ते विकल्प को तला ा लेगी।

'मनुश्य की संख्या समस्या नहीं है। मनुश्य तो संसाधन युक्त हैं।

जैसा कि जूलियन साइमन कहते हैं कि मनुश्य का मस्तिश्क भाा   वत संसाधन है। यह मस्तिश्क ही पृथ्वी के गर्भ से ज़्यादा–से–ज़्यादा संसाधनों को अस्तित्व में लाता है। जरा ऊर्जा का इतिहास देखिए – जब इंग्लैण्ड में औद्योगिकीकरण भाुरू हुआ, तो इस्पात बनाने में चारकोल (काठकोयला) का प्रयोग होता था। इससे ब्रिटि   ा वनों में कमी आई। मनुश्य के मस्तिश्क ने इस चुनौती को स्वीकार किया और कोयले की खदानों से कोयला निकालना भाुरू किया। चारकोल की कमी के चलते यह बहुत ही फायदेमंद था। समय के साथ कोयला ऊर्जा का मुख्य स्रोत हो गया तथा ब्रिटेन के जंगल पुनः हरे–भरे हो गये। फिर लैम्पों में रो   ानी के लिए व्हेल के तेल का प्रयोग किया जाता था। विलुप्त–प्राय होने तक व्हेलों का ि   ाकार किया गया और स्वाभाविक तरीके से व्हेल के तेल की कीमत बढ़ी। मनुश्य के मस्तिश्क ने इस चुनौती को जमीन के अंदर तेल खोजकर हल किया। इसके बाद बिजली आई। आज आप कोयले का वि   ााल ढेर खरीद सकते है। अब कोयले की खुदाई नहीं के बराबर है परन्तु, अभी भी जमीन के अन्दर कोयला है। यह समाप्त नहीं हुआ है।

ठीक इसी प्रकार तेल एंव प्राकृतिक गैस भी हमे   ाा रहेंगे क्योंकि मानव मस्तिश्क इनके विकल्प तला   ा लेगा। यहां तक कि ऊर्जा के ये अपूर्य (non-renewable) स्रोत भी कभी पूर्णतः समाप्त नहीं होंगे। ऊर्जा की कीमत इसके विकल्पों को तला   ाने के लिए तत्पर करेगी।

ज़रा सोचिये

- काठमांडू में गगन चुंबी इमारतें नहीं हैं। क्या आप अनुमान लगा सकते हैं कि यह सम्पत्ति के अधिकार से कैसे सम्बन्धित है?
- ऐसे दुकानदारों का क्या किया जा सकता है, जो लाखों की सम्पत्ति के लिए मामूली सा किराया देते हैं और इसीलिए किराया नियंत्रण को हटाने का विरोध करते हैं?
- कोई एक धातु चुनिए तथा पिछले पचास वर्शो में इसकी कीमत का अध्ययन कीजिए।

11

नौकरशाही एवं लोक प्रशासन का भवि य

नौकर ाही निम्नलिखित चार सिद्धान्तों पर आधारित एक सुसंगठित व्यवस्था है –

- पदानुक्रम (Hierarchy) – पदानुक्रम का तात्पर्य है कि आप योग्यता को अनदेखा कर हमे ाा अपनी से अधिक उम्र के लोगों के अधीन कार्य करेंगे। यह व्यवस्था बुजुर्गों के भाासन को बढ़ावा देती है। नौकर ाही में युवा वर्ग प्रौढ़ वर्ग के लिए स्वयं का बलिदान देता है।

- अवैयक्तिकता (Impersonality) – अवैयक्तिकता का तात्पर्य है कि अफसर के व्यक्तिगत निर्णय की बजाय ब्यूरो नियमों के अनुसार निर्णय करती है। अवैयक्तिकता के लिए दूसरा भाब्द निशपक्षता या समदर् िता (impartiality) है।

- कैरियर – जीवन भर आदे ा के पालन का वचन।

- प्रवीणता (Expertise) – प्रवीणता से तात्पर्य है कि तार्किक एवं ज्ञान–आधारित भाासन उपलब्ध कराना। हमारे भाहरों में यातायात की स्थिति को

देखकर निर्णय किया जा सकता है कि भारतीय नौकर ाहों के पास हमारे आम मुद्दों को संचालित करने का ज्ञान नहीं है। यह स्थिति कार्यात्मक अज्ञानता (functional illiteracy) के नाम से भी जानी जाती है।

सरकारी सेवाओं को संगठित करने की इसी विधि का पूरे संसार में अनुसरण किया जाता है। लेकिन चोरतन्त्र (kleptocracy) में इसकी हानियाँ हैं जिन्हें समझ लेना चाहिए –

नौकर ाही ऐसे कैरियर प्रदान करती है जिसमें युवा वर्ग, प्रौढ़ वर्ग के लिए अपना बलिदान देता है। इस प्रकार नौकर ाही **प्रौढ़ों के भासन** को बढ़ावा देती है। चूँकि हम भारत को बदलना चाहते हैं इसलिए यह ज़रूरी है कि भारत के मेधावी युवा अपने आपको ऐसे कैरियरों में बलिदान न करें जिनमें प्रौढ़ों के कु ाासन जैसी व्यवस्थाएं फलती–फूलती हों।

नौकर ाही संगठन की जगह एक विकल्प है– नव लोक–प्रबन्धन या मुक्त बाजार लोक प्र ाासन।

मुक्त बाज़ारवादी ऐसी अति सीमित सरकार में वि वास रखते हैं जो केवल सार्वजनिक सम्पत्ति एवं सेवाओं की व्यवस्था के लिए समर्पित होती हो।

और ये सेवाएं सिर्फ एक पदाधिकारी, जो प्रतिस्पर्धी निजी सेवा प्रदाताओं को अनुबन्ध देने का कार्य करे, के द्वारा ज्यादा आसानी से उपलब्ध करायी जा सकती हैं। उदाहरण के लिए – कूड़ा करकट इकट्ठा करने के कार्य को लें। अगर हम इसे नौकर ाही के तरीके से करें तो हम एक एकाधिकार वाले विभाग के अधि ाासी प्रभारी को नियुक्त करेंगे, जो सफाई कर्मियों की नियुक्ति करेगा, ट्रक खरीदेगा, झाड़ू खरीदेगा, आदि–आदि। हम पायेंगे कि ब्यूरो प्रमुख का अधि ाकां ा समय ब्यूरो की आन्तरिक क्रियाओं के संचालन (प्रोसेसिंग ऑफ ब्यूरो इनपुट्स) में नश्ट होता है – वह अपने स्टाफ की आन्तरिक समस्याओं (जैसे– अवका ा, अनु ाासन, प्रोन्नति और इसी तरह की अन्य समस्याओं) की देखभाल करता है; वह झाड़ू और ट्रकों की खरीद फरोख्त एवं रख–रखाव पर ध्यान देता है। उसके पास ब्यूरो के वास्तविक कार्यफल (अर्थात् परिणाम कि भाहर सचमुच में साफ हुआ कि नहीं) के लिए समय नहीं होता है।

यदि हम नव लोक–प्रबन्धन एवं अनुबन्ध आधारित कूड़ा–करकट इकट्ठा करने का अनुप्रयोग करें तो जिस एकमात्र पदाधिकारी की हमें आव यकता होगी, वह वास्तव में यह देखने में सक्षम होगा कि कार्य अनुबन्ध के अनुरूप हुआ है या नहीं। इस प्रकार हम ज्यादा प्रभावी सार्वजनिक सेवाएं प्राप्त कर सकेंगे।

इससे यह संभावना भी प्रबल होती है कि प्रतिस्पर्धा एवं चयन के चलते कई सारे सेवा प्रदाता (बोली लगाने वाले) सामने आयेंगे। इससे वास्तविक कीमतों में गिरावट होगी और वित्तीय घाटे (fiscal deficit) पर नियंत्रण एवं स ाक्त मुद्रा (sound money) इकट्ठा करने में मदद मिलेगी।

नव लोक–प्रबन्धन पर काफी मात्रा में साहित्य उपलब्ध है और वि व भर में लोक प्र ाासन में यह तेजी से उभरता आन्दोलन है। जो भारतीय युवक भविश्य में प्र ाासन में कार्य करना चाहते हैं, उन्हें इस प्रतिमान (paradigm) को जानना और इसके बारे में और अध्ययन करना चाहिए।

यहाँ नोट करने योग्य सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि बिना नौकर ाहों की ऐसी क्षीण सरकार का अस्तित्व सम्भव है जो सार्वजनिक सुविधाएं एवं सम्पत्ति उचित मूल्य के साथ उपलब्ध कराती हो। इसी प्रकार की लोक प्र ाासनिक व्यवस्था, हमारे नवयुवकों को भारत में स्थापित करनी चाहिए।

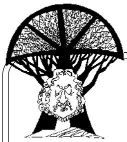

ज़रा सोचिये

- ❖ निगम के स्तर पर, अपनी स्थानीय सरकार से आप किन–किन सेवाओं की उम्मीद करते हैं? क्या इनमें से कोई भी सेवा वर्तमान में सन्तोशजनक स्थिति में है? नव लोक–प्रबन्धन इन चीजों को कैसे बेहतर बना सकता है?
- ❖ यदि आप जन प्रतिनिधि या अधिकारी होते (चाहे नियुक्त किये गये या चुने गये) तो सरकारी विभागों में आव यकता से अधिक स्टाफ की समस्या से आप कैसे निपटते?

12
ज्ञान

मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था में **'श्रम विभाजन'** धन पैदा करने की कुंजी है। इस श्रम विभाजन के साथ **'ज्ञान का विभाजन'** भी जुड़ा हुआ रहता है। यह विभाजन हमें किसी आधुनिक अस्पताल या समाचार पत्र कार्यालय में सर्वाधिक दिखाई देता है परन्तु यह हमें अपने चारों ओर के संसार में धोबी, बढ़ई, प्लम्बर, रिसेप्‍ ानिश्ट इत्यादि के रूप में भी दिखाई देता है, जहाँ ये प्रत्येक अपने अलग तरह के ज्ञान के साथ कार्य करते हैं । *इस ज्ञान का कुछ भाग अमूर्त या गुप्त (uncodifiable) होता है।*

अर्थात् ऐसा बहुत सा ज्ञान है जिसे लिखा नहीं जा सकता। उदाहरण के लिए – जब आप बाज़ार से एक नारियल खरीदते हैं तो इसमें उस व्यक्ति का **ज्ञान** भी भाामिल होता है, जो यह जानता है कि कैसे नारियल के पेड़ पर चढ़ा जाता है और कैसे इसकी कटाई की जाती है? क्या इस ज्ञान को मूर्त (codified) रूप में रखा जा सकता है?

यदि आप अच्छे साइकिल चालक या तैराक या पेस्ट्री भोफ या वायलिन वादक बनना चाहते हैं तो केवल पुस्तक पढ़कर ही आप इन कार्यों को नहीं सीख सकते। आपको कुछ अनुभव भी प्राप्त करना होगा।

बाज़ार हममें से प्रत्येक द्वारा अपने वि ाश्ट ज्ञान का उपयोग करने पर निर्भर करता है। 'नियोजक' को वि वास होता है कि वह इस ज्ञान को इकट्ठा कर सकता है और इसी आधार पर वह अर्थव्यवस्था का नियोजन करता है। चूँकि अधिकां ातः ज्ञान अमूर्त (Uncodifiable) रूप में है, अतः नियोजक सम्पूर्ण ज्ञान को इकट्ठा नही कर सकता, परिणामस्वरूप नियोजन का असफल होना नि चत है।

बाजार बिना भाक्ति के ज्ञान का प्रयोग करता है।

नियोजन बिना ज्ञान के भाक्ति का प्रयोग करता है।

अर्थ ाास्त्र की पूर्ण परिभाशा इस प्रकार है :–

श्रम एवं ज्ञान के विभाजन द्वारा धन पैदा करने का अध्ययन ही अर्थ ाास्त्र है।

इस परिभाशा के कुछ नि चत अनुप्रयोग हैं –

- गरीबी का अध्ययन अर्थ ाास्त्र नहीं है।
- *स्व–पर्याप्तता* या *स्वदे ी* अर्थ ाास्त्र नहीं है क्योंकि यह श्रम विभाजन पर आधारित नहीं है।
- नियोजन अर्थ ाास्त्र नहीं है क्योंकि यह ज्ञान–विभाजन पर आध ाारित नहीं होता है। इस प्रकार नियोजन में चूँकि ज्ञान सम्बन्धी असफलता होगी। अतः बिजली, पानी, मकान, रेलवे–बर्थ, गैस इत्यादि प्रत्येक वस्तु की कमी होगी। ये सभी कमियाँ मुक्त बाजार में नहीं रहेंगी क्योंकि मुक्त बाजार इन सभी चीजों को बहुतायत में लेकर आता है।

इसका तात्पर्य है कि भारतीय अर्थव्यवस्था जैसी किसी बन्द अर्थव्यवस्था में मुक्त व्यापार ज्ञान का विस्फोट लायेगा क्योंकि लाखों लोग नये उत्पादों, प्रकियाओं एवं प्रौद्योगिकी के बारे में जानेंगे। यदि दे ा बाहरी दुनिया के ज्ञान के स्तर के साथ कदम मिलाना चाहता है तो उसे मुक्त व्यापार को अपनाने की आव यकता है।

यह अमर्त्य सेन जैसे समाजवादी अर्थ ाास्त्रियों की सलाह के विपरीत है, जो यह कहते हैं कि जब तक सरकार पहले जनता की ि ाक्षा को नहीं सुध ाारेगी तब तक दे ा भूमंडलीकरण में क्षति उठायेगा। हमारा वि लेशण (जो 'ज्ञान' के संघटकों पर आधारित है और 'ि ाक्षा संघटक' को इससे अलग करता है) यह

सुझाव देता है कि मुक्त व्यापार एवं मुक्त आप्रवास पूरे दे ा में ज्ञान प्रसार के सर्वोत्तम उपाय हैं। संसार को व्यापारिक प्रतिबन्धों के द्वारा दूर रखना तथा सरकारी ि ाक्षा को बढ़ावा देना घोर अनर्थ का नुस्खा है।

यह भी ध्यान देना अनिवार्य है कि चोरतंत्र में सरकार से ज्ञान के लिए कहना भी खतरनाक है। सरकार ि ाक्षा की ज्योति नहीं है बल्कि इसका कार्य इसके विपरीत है यथा – जीवन सुरक्षा, स्वतन्त्रता व सम्पत्ति की रक्षा आदि। सरकार कोई वि वविद्यालय नहीं है। सरकार में या राजनैतिक बाजार में कोई भी ज्ञान से जुड़ा नहीं है। सरकार स्वयं ज्ञान हासिल नहीं करती है। यदि सरकार के पास ज्ञान होता तो हमारा लोक प्र ाासन इतना हौच–पौच न होता व हमारी अर्थव्यवस्था इतनी दयनीय न होती। चूँकि सरकार अनभिज्ञ (ignorant) है, अतः इसे सार्वजनिक ि ाक्षक की भूमिका की अनुमति नहीं दी जा सकती। सरकार को ज्ञान के क्षेत्र से बाहर रहना चाहिए व इस क्षेत्र को उन लोगों के लिए मुक्त छोड़ना चाहिए जिनके पास प्रदान करने के लिए ज्ञान है।

ध्यान दें कि अब भारत सॉफ्टवेयर इंजीनियर निर्यात करता है। यह भी ध्यान दें कि ये इंजीनियर लाभ कमाने वाले व सरकार से बिल्कुल अलग निजी संस्थानों जैसे– एप्टेक, एन.आई.आई.टी. आदि द्वारा ि ाक्षित किये गये थे। हमें ज्ञान एवं इसके प्रसार के लिए निजी प्रतिश्ठानों की आव यकता है जो विद्यालयों एवं वि वविद्यालयों की श्रृंखलाएं स्थापित कर सकें। समाजवादी राज्य के सभी भौक्षिक प्राधिकरण पूर्णतः असफल प्रचारक हैं। इनके ''ज्ञान'' को पूर्ण रूपेण अस्वीकृत कर देना चाहिए। किसी को भी समाजवादी राज्य द्वारा नियत (prescribed) ज्ञान का अध्ययन नहीं करना चाहिए। मानव संसाधन विकास मंत्रालय को बंद कर देना चाहिए। इस मंत्रालय के तात्कालिक प्रमुख भाजपा नेता मुरली मनोहर जो ाी, कर दाताओं के धन से संचालित भारतीय वि वविद्यालयों में, ज्योतिश भाास्त्र पढ़वाना चाहते थे। कौन चाहता है उनका ज्ञान?

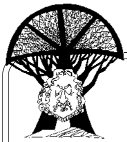

ज़रा सोचिये

- ❖ अमूर्त (uncodifiable) ज्ञान के अनेक उदाहरण सोचिए ।
- ❖ सड़क किनारे काम करने वाले वाहन मिस्त्री के बारे में सोचिए। ज्ञान तक उसकी पहुँच बनाने के लिए कौन सी नीति सही रहेगी?
- ❖ बाज़ारीय अर्थव्यवस्था की सफलता वि ोशीकृत ज्ञान के विभाजन पर निर्भर करती है। आप विद्यालयों में किस पाठ्यक्रम व्यवस्था की सिफारि ा करेंगे जो ज्ञान पिपासुओं के बीच वि ोशज्ञता उपलब्ध कराए?
- ❖ राजनैतिक अर्थव्यवस्था को वि ाश्ट ज्ञान माना जाना चाहिए या यह सामान्य ज्ञान का ही एक भाग होना चाहिए?

13

सार्वजनिक सम्पत्तियाँ

पूर्व के अध्यायों में हम जाँच कर चुके हैं कि किस अनुपात में सार्वजनिक सामग्रियों की आपूर्ति सामूहिक कर एवं राजस्व से किये जाने की आव यकता है?

लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि बाज़ार एवं निजी उद्यमियों को सार्वजनिक सामग्रियों की व्यवस्था में प्रवे ा करने की अनुमति नहीं देनी चाहिए। रेडियो या दूरद ान (टेलीविजन) प्रसारण का उदाहरण लें। स्तरीय पुस्तकों की परिभाशानुसार ये सार्वजनिक सामग्रियाँ हैं क्योंकि किसी को इनके उपभोग से रोका नहीं जा सकता एवं जब हम इसका उपयोग करते हैं तो किसी अन्य के उपभोग को प्रभावित नहीं करते या उसके उपभोग की मात्रा नहीं घटाते। फिर भी बिना सरकारी धन खर्च किए रेडियो एवं टेलीविजन का प्रसारण हम तक निः ुल्क आता है क्योंकि ये सामग्रियाँ निजी सामग्रियों (विज्ञापन) के साथ जुड़ी हैं। हम क्रिकेट का सीधा प्रसारण निः ुल्क देख पाते हैं क्योंकि विभिन्न प्रतिशठान अपने उत्पादों के विज्ञापन हमें दिखाना चाहते हैं। ठीक इसी प्रकार लाइट हाउस (प्रका ा स्तम्भों) को पहले सार्वजनिक सम्पत्ति माना गया परन्तु महान् अर्थ ाास्त्री रोनाल्ड कोज ने दिखाया कि इंग्लैण्ड में लाइट हाउस निजी क्षेत्र में आ गये क्योंकि उन्हें निकटवर्ती निजी बंदरगाहों (निजी सम्पत्ति) के द्वारा वसूले जाने

वाले तट–कर में हिस्सा प्राप्त करने की अनुमति मिल गयी। इस प्रकार सार्वजनिक सामग्रियों के साथ निजी सामग्रियों को मिलाकर हम राजकीय एकाधिकार की आव यकता समाप्त कर सकते हैं। भूमिगत पैदल पार–पथ (sub-ways) इसका अच्छा उदाहरण हैं।

सिद्धान्ततः इसका कोई कारण नहीं है कि कोई निजी उद्यमी पैदल पार–पथ बनाए क्योंकि वह इस पार–पथ के प्रयोगकर्ताओं से भुल्क नहीं वसूल सकता। यह संभव है परन्तु अत्यन्त दुरूह है। फिर क्या रास्ता निकाला जा सकता है?

इन पार पथों में कैफे एवं दुकान बनाने के लिए भू–सम्पत्ति (real estate) विकसित करना संभव हो सकता है। इन कैफे तथा दुकानों की बहुत माँग होगी क्योंकि इनके सामने से बहुत से लोग (संभावित ग्राहक) गुजरेंगे। यदि निजी विकासकर्ताओं को ऐसे पार–पथ बनाने की अनुमति दे दी जाए जिसमें बनी दुकानों को वे बेच सकें या किराए पर उठा सकें तो यह आव यक सार्वजनिक सामग्री पैदल यात्रियों को बाज़ार द्वारा निः ुल्क उपलब्ध करायी जा सकती है।

निजी बाज़ार का सार्वजनिक सामग्री की आपूर्ति में भाामिल होना महत्वपूर्ण है क्योंकि राजनैतिक बाज़ार में इतनी सारी दुश्क्रियाएं हैं। इसके ऊपर भरोसा नहीं किया जा सकता। दिल्ली के पैदल पार–पथों में सरकारी निवे ा का उदाहरण लीजिए – दिल्ली का साउथ एक्टें ान क्षेत्र व्यस्त मुद्रिका मार्ग (रिंग रोड़) द्वारा बँटा हुआ है तथा सड़क के दोनों तरफ महत्वपूर्ण बाज़ार है। जबकि यहाँ ऐसा पारपथ जिसमें दुकानें हों, अत्यन्त सफल होगा।

हालाँकि यदि आप बहादुर भााह जफर मार्ग स्थित टाइम्स ऑफ इण्डिया के कार्यालय के पास जाएं तो वहाँ आपको एक पार–पथ मिलेगा जिसमें दो वि ाल दुकानों लायक जगह है और सरकार ने इस जगह में दिल्ली पर्यटन विभाग द्वारा संचालित ''मीडिया कैफे'' नामक एक सरकारी कैफेटेरिया खोला हुआ है। क्या सार्वजनिक सम्पत्ति के प्रयोग का यह तरीका बुद्धिमत्तापूर्ण है?

इसीलिए जिन तरीकों से सार्वजनिक सामग्री, बाज़ार द्वारा उपलब्ध करायी जा सकती है, उन उपायों को देखना महत्वपूर्ण है –

- स्थानीय निकाय – यहाँ तक कि पूरी टाउनि ाप इस प्रकार विकसित की जा सकती है जहाँ विकासकर्त्ता एवं निवासी, आन्तरिक सड़कों एवं

सुरक्षा के लिए अदा करें।

● दो भाहरों के बीच में **इन्टरसिटी एक्सप्रेसवेज** निजी क्षेत्र द्वारा उपलब्ध कराये जा सकते हैं, यदि हम इनको भू–सम्पत्ति के विकास (जैसे – टाउनि ाप, सुपर मार्केट, मॉल, खाने–पीने की दुकानें, पेट्रोल पम्प और बिल बोर्ड विज्ञापन आदि) से जोड़ दें।

इस प्रकार हम एक न्यूनतमवादी (minimalist) राज्य का निर्माण कर सकते हैं और उसमें मुक्त सामाजिक संस्थाओं (free civil society)की भूमिका के लिए काफी जगह बना सकते हैं।

ज़रा सोचिये

- ❖ उन सभी सार्वजनिक सुविधाओं के बारे में सोचिए जो निजी सम्पत्ति के साथ जोड़ी जा सकती हैं और बाज़ार द्वारा जिनकी आपूर्ति की जा सकती है । उदारहण के लिए – सड़क के चिह्न या सड़क की प्रका ा व्यवस्था (स्ट्रीट लाइट)
- ❖ न्यूनतमवादी (minimalist) राज्य में कर के धन से पोशित बहुत कम सेवाएं होंगी अतः कर भी बहुत कम होगा। क्या आप उन सभी **कर–पोशित सेवाओं** के बारे में सोच सकते हैं, जिनकी आपको तब भी आव यकता होगी?
- ❖ ये सुविधाएं स्थानीय, राज्य या केन्द्रीय में से किस स्तर पर दी जायेंगी?

14

नैतिकता एंव धर्मनिरपेक्षवाद

मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था के आलोचक कहते हैं कि यह नितांत अनैतिक है क्योंकि यह **लालच** पर आधारित है। लालच – लाभ कमाने का भद्दा प्रेरक। क्या यह आलोचना वैध है? इस क्यों को समझना जरूरी है क्योंकि जन नैतिकता समाजवाद के कहीं बहुत नीचे दब गयी है। प्रतिदिन घोटाले होते हैं। चोरों (नेताओं) को आर्थिक स्वतन्त्रता का अनैतिक कहने की अनुमति नहीं मिलनी चाहिए।

मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था में मनुश्य एक–दूसरे से सहयोग करते हैं। गड़रिये, धोबी , पुलिस वाले, दन्त चिकित्सक , प्लम्बर एवं बिजली वाले के द्वारा जब श्रम का विभाजन होता है तो वास्तव में हम दूसरे लोगों के भार को कम करने के मार्ग तला ाते हैं। मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था में हम वि ोशज्ञता की तला ा करते हैं क्योंकि हमें वि वास होता है कि ऐसा करने से हम अपने साथी नागरिकों (fellow–citizens) की आव यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। यह सच है कि हमें भी लाभ होता है। ऐसा हम लाभ कमाने के लिए ही करते हैं। लेकिन क्या लाभ कमाना अनैतिक है ?

अपने भोजन के साथ एक छोटा सा प्रयोग कीजिए। ज़रा देखिये इसमें क्या–क्या भाामिल है – चावल, सब्जियाँ, सलाद, तेल एवं मसाले आदि। ज़रा

उन सभी लोगों के बारे में सोचिये जिन्होंने इन सबको पैदा किया? क्या उन सभी ने आपको इन चीजों की आपूर्ति इसलिए की क्योंकि वे सभी आपको चाहते हैं? वास्तव में, वे आपको जानते तक नहीं। यदि आपको उनके प्यार के भरोसे रहना होता कि वे सभी आपकी रसोई को सब्जी, सलाद, मसाले आदि से भर देंगे तो क्या आपको अपना भोजन मिलता? आपको भूखों मरना पड़ता। लाभ कमाने की भावना **स्वार्थपरक** लग सकती है लेकिन यह कार्य करता है और दुनिया इसी से चलती है। हम बिजली और पानी इसलिए नहीं पाते कि ये चीजें समाजवादी राज्य द्वारा दानस्वरूप दी जाती हैं।

अब एक और प्रयोग कीजिए – जरा सोचिये आप क्या कार्य करते हैं? या बड़े होकर आप क्या करना चाहेंगे? क्या आप इस कठिन संसार में पारिवारिक सुख–सुविधाओं के लिए श्रम विभाजन में भाामिल होंगे या मात्र मानवता से प्रेम के कारण आप श्रम विभाजन से जुड़ेंगे। कई लोग इसका उत्तर देंगे कि मैं इसलिए कार्य वि ाेश में वि ाेशज्ञता प्राप्त करना चाहता हूँ ताकि मैं खुद के लिए अधिकतम लाभ कमा सकूँ। कुछ लोगों का यह उत्तर होगा कि मैं एक डॉक्टर बनूंगा और अफ्रीका के जंगलों में जा कर बीमारों का इलाज करूँगा। इस प्रकार के कथन वाले लोग अतुलनीय रत्न हैं। मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था यकीनन एक तीसरे प्रखण्ड में वि वास करती है : स्वैच्छिक संगठन– जो बहुत कुछ अच्छा कार्य करते हैं। परन्तु ये भी मुख्यतः लालच पर ही आधारित होते हैं। यह लालच एक अच्छी बात है। एक अच्छे डॉक्टर को अफ्रीका के जंगलों में आध ुनिक दवाईयों की आव यकता होगी जिसे लालची दवा कम्पनी ही उत्पादित करेगी। अधिकाँ ा स्वैच्छिक कार्य उन लोगों द्वारा दिये गये दान पर जीवित रहते हैं, जो बाज़ार अर्थव्यवस्था में काम करते हैं तथा लाभ उठाते हैं।

मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था लालच पर आधारित होते हुए भी नैतिक है। सत्य यह है कि **व्यापार में दोनों पक्ष लाभान्वित होते हैं।** बिजली ठीक करने वाला, मेरे घर का फ्यूज जोड़ने के लिए पचास रुपये लेता है और लाभान्वित होता है। परन्तु अगर मैं उसे पचास रुपये देता हूँ तो मुझे भी लाभ मिलता है (बिजली की सुचारु व्यवस्था के रुप में)। एक अन्य उदाहरण सब्जी वाले का लेते हैं । मेरे घर के बाहर उसके ठेले से मैं एक किलो आलू खरीदता हूँ। उसे लाभ मिलता है। उसने थोक बाज़ार में इसे कम भाव में खरीदा होगा। पर अगर मैं थोड़ा कश्ट उठाकर और खर्चा करके थोक बाजार जाऊँ और आलू लाऊँ तो वह मुझे ज्यादा मँहगा पड़ेगा। इस प्रकार हालाँकि सब्जी वाले को भी लाभ मिला, पर मैं भी लाभान्वित हुआ।

व्यापार एक धनात्मक जोड़ का खेल है। (trade is a positive sum game)

इस तरह, मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था मानवीय नैतिकता का एक धर्म निरपेक्ष आधार है। इसी तरह नैतिकता, धर्म से पहले उभर कर आयी। पुराने समय में जब लोग अपने साथ, थोड़ा–बहुत, जो होता था (जैसे – थोड़ी मछली, कद्दू, थोड़ा माँस) उसे लेकर गाँव की चौपाल जाते थे। वहाँ उन्होंने लेन–देन के माध्यम से एक–दूसरे से अन्तःक्रिया, का एक नैतिक रास्ता तला ा लिया । लेन–देन की नैतिक प्रक्रिया (नैतिक इसलिए क्योंकि कोई चोरी नहीं कर रहा है।) के दौरान उन्होंने पाया कि यह प्रक्रिया तभी मुमकिन हो सकती है जबकि इसमें भाामिल सभी लोग कुछ नि चत नियमों का पालन करें। जैसे, पहला – यह समझ लेना, कि क्या **मेरा** है और क्या **तुम्हारा** है ? अर्थात् *सम्पत्ति का अधिकार* । और दूसरा – यह सुनि चत करना कि जो कोई इन अधिकारों का पालन न करे अर्थात् जो चोरी करे, वह सजा पाये तथा वह चोरी का सामान उसके आधिकारिक स्वामी को वापस कर दिया जाय। यानि कि बाज़ार अर्थव्यवस्था का आधारभूत नैतिक नियम है – **'आपको चोरी नहीं करनी चाहिए'** । सम्पत्ति के अधिकारों का प्रवर्तन (लागू करना) सरकार का आधारभूत कानून एवं आव यक दायित्त्व होना चाहिए। भारत का समाजवादी संविधान नागरिकों के सम्पत्ति के अधिकारों की गारंटी नहीं देता। समाजवादी कानून विधि सम्मत लूट (अर्थात् राश्ट्रीयकरण, किराया नियंत्रण एवं भूमि का पुनर्वितरण) में रत रहता है।

समाजवादी कानून अनैतिक है।
स्वतन्त्रता नैतिक है।

यह देखने के बाद कि *कैसे बाज़ार मानवीय नैतिकता के धर्म निरपेक्ष आधारों में से एक हैं,* यह जानना ज़रूरी हो जाता है कि क्या भारत के मुख्य धर्म – हिन्दू व इस्लाम – मुक्त बाज़ार के खिलाफ हैं?

हिन्दू धर्म बाज़ार की नैतिकता बताने वाला पहला धर्म था और वह भी सिर्फ दो भाब्दों में **– भुभ–लाभ** अर्थात् लाभ भुभ है एवं लाभ समाज के लिए भुभ संकेत है। यह हिन्दुओं की एक महान दा निक खोज है, जिसे भून्य की खोज से ज्यादा वरीयता दी जानी चाहिए। पि चम को तो इस द न का सन् 1776 तक इन्तजार करना पड़ा जब नैतिक द न के एक प्रोफेसर एडम स्मिथ ने यही बात एक वृहद तथा अनूठे कार्य पर आधारित ग्रन्थ ***एन इन्क्वायरी इन टू द नेचर एण्ड कॉजेज ऑफ द वेल्थ ऑफ ने ान्स*** में कही। तब से पहले

ईसाई रूढ़िवादी बाज़ार की नैतिकता को नहीं समझ पाये थे। एडम स्मिथ ने बताया कि जब सरकारी हस्तक्षेप से मुक्त तार्किक स्व–लाभ प्रभावी होता है तो कैसे एक अदृ य हाथ समाज का भला करता है। उन्होंने बताया कैसे यह प्रक्रिया समाज को सम्पन्न और नैतिक बनाती है? जैसा कि लार्ड एक्टन (एक नैतिक दा र्निक) ने भी बाद में जोड़ा – **''सत्ता (ाक्ति) भ्रश्ट करती है और परमसत्ता (निरंकु ा भाक्ति) सर्वाधिक भ्रश्ट करती है।''**

स्वतन्त्रता नैतिक है।
ताकत भ्रश्ट करती है।

एक मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था में अगर समाज पूर्णतः लाभ देखने वाले लोगों से भरा हो तो वह नैतिक होगा। भाक्ति ाली समाजवादियों ने अपनी आर्थिक पाबंदियों से समाज को भ्रश्ट कर दिया है। उन्होंने हम पर ये पाबंदियाँ, हमें लालच के तथाकथित दुश्प्रभाव से बचाने के लिए थोपी हैं। पर लालच इस चोर–तंत्र से कहीं बेहतर है।

इस्लाम धर्म भी मुक्त बाज़ार पर आधारित है। मोहम्मद साहब भी एक मुक्त व्यापारी थे और उनकी बेगम खादिजा भी। इस्लाम का पंचांग भी मुक्त आप्रवास (immigration) की एक घटना – *मक्का से मदीना के लिए प्रस्थान* – से भाुरू होता है। इस्लाम सक्रिय रूप से उद्यम ाीलता (entreprenuership) को बढ़ावा देता है। वह सम्पत्ति के अधिकारों की सुरक्षा करता है तथा इसने एडम स्मिथ से कई वर्श पहले मुक्त व्यापार का सिद्धान्त खोजा था। **अनुचित लाभ** पर भी इस्लाम के नियम हैं।

भारत में बिना मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था के सच्ची धर्मनिरपेक्षता नहीं आ सकती । बाज़ार मानवीय नैतिकता के धर्म निरपेक्ष आधारों में से एक है। इस्लाम और हिन्दू धर्म, दोनों मुक्त बाजार में वि वास रखते हैं। अगर हम इनके मतभेदों को अनदेखा कर इनकी बुनियादी समानताओं पर बल दें तो ये धर्म भाान्तिमय तरीके से साथ–साथ रह सकते हैं।

स्वन्त्रता नैतिकता लाती है जबकि ताकत भ्रश्ट करती है नामक ६ ाारणा को एक छोटे से वैचारिक प्रयोग में भाामिल होकर समझा जा सकता है।

केलों की एक थाली लें और इसे बन्दरों के एक समूह की तरफ ले जायें। क्या होगा? बन्दर आपके केले चुरा लेंगे। अब केलों से भरी एक, दूसरी थाली लें और किसी ऐसी जगह जायें, जहाँ कोई बन्दर नहीं है पर बहुत से इंसान जरूर हैं (जैसे किसी एक बाज़ार – कनॉट प्लेस, ब्रिगेड रोड या चाँदनी

चौक) क्या होगा? कोई इंसान आपके केले नहीं चुरायेगा अगर उनको केले चाहिए होंगे तो वे आपके पास आकर आपसे पूछेंगे कि केलों का क्या दाम है? मनुश्य एक नैतिक जीव है क्योंकि उसके पास व्यापार करने का कौ ाल है (लेना और बदले में देना)। बन्दर चोरी करता है क्योंकि वह ली हुई चीज के बदले में कुछ दे नहीं सकता।

अब, यह देखने के लिए कि कैसे ताकत भ्रश्ट करती है? बाजार में कुछ देर घूमिये और ध्यान से देखिये कि हम में से **बन्दर** कौन है? आप पुलिसवालों तथा नगरपालिका के लोगों को मुफ्त में सामान लेते हुए देखेंगे – **हफ्ता वसूलने वालों का गैंग**। यह लूटने–खसोटने वाले लोग हैं जो बाजार में गरीब से गरीब को भी नहीं छोड़ते। यह चोर तन्त्र की जीवंत तस्वीरें हैं।

अच्छे आचरण

मानव जाति नैतिक होने के साथ नैतिकता की रीढ़–**अच्छे आचरण** को भी धारण करती है। ये अच्छे आचरण इसलिए उभर कर आये क्योंकि मानव को बाज़ार अर्थव्यवस्था में एक–दूसरे से सहयोग की जरूरत है और अच्छे आचरण हमें इसमें मदद करते हैं। अच्छे आचरण ग्रीस (grease) का कार्य करते हैं, और रोजमर्रा के आर्थिक विनयम के पहियों को घर्शण रहित (lubricate) करते हैं। ध्यान दीजिए कि दुकानदार कितने मृदुभाशी होते हैं जबकि सरकारी बाबू अनिवार्य रुपेण रुखे।

सरकारी नियंत्रण से रहित एक पूर्णतः मुक्त बाज़ार में पुरस्कार उन लोगों के पास नहीं जायेंगे – जिनके सम्बन्ध हैं या जो बल प्रयोग (दादागीरी) करते हैं, बल्कि उन लोगों के पास जायेंगे जो अपने साथी नागरिकों की आव यकताओं की पूर्ति के लिए कठिन परिश्रम करते हैं और अच्छे आचरण का प्रयोग करते हैं। स्वतंत्रता की स्थिति में सफल होने के लिए यही गुण अनिवार्य होंगे। यही कारण है कि लखनऊ अपनी **नफासत** और बंगाल **भद्रलोक** की अपनी छवि के कारण प्रसिद्ध था। पिछले 50 वर्शों से समाजवाद के अस्तित्व ने सभी आचारों–व्यवहारों को नश्ट कर दिया है।

प्रतिश्ठा (Reputation)

मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था में नैतिकता सभी लोगों के लिए दीर्घकालिक हितकारी होती है। चोरी और धोखाधड़ी अल्पकालिक रूप से लाभदायक लग सकती है परन्तु यह लम्बे समय तक कार्य नहीं करती क्योंकि धोखेबाज और ठग जल्दी ही पकड़ में आ जाते हैं और वे अपने ग्राहक गवाँ बैठते हैं। इसलिए, मुक्त

बाज़ार में नाम या प्रतिश्ठा का बहुत मूल्य है।

सभी अच्छे ब्रान्ड (Brand Names) प्रतिश्ठा पर आधारित हैं। अगर आप किसी चलताऊ कम्पनी का माल (मान लीजिए, खुला हल्दी पाउडर) घर ले जाते हैं, तो आप पायेंगे कि वह मिलावटी है। दूसरी तरफ अगर एक नामी कम्पनी भाुद्धता की गारन्टी देती है तो आप अपने रूपये का ठीक मूल्य मिलने के प्रति नि चन्त हैं, क्योंकि वह नामी कम्पनी एक छोटे फायदे के लिए अपनी प्रतिश्ठा को धूमिल नहीं करेगी।

निश्कर्शतः कहा जा सकता है कि **स्वतन्त्रता, नैतिकता तथा अच्छे आचरण लाती है।** दूसरी तरफ ताकत भ्रश्ट (विकृत) करती है। यह अत्यधिक भाक्ति या अधिकार ही तो हैं जिन्होंने चोरतन्त्र की रचना कर डाली। इन अधि ाकारों व भाक्तियों को वापस छीनकर जनता को आर्थिक स्वतंत्रता दी जानी चाहिए ताकि हमारा समाज नैतिक हो सके।

मुक्त बाज़ार के धर्म निरपेक्ष आधार पर आधारित यह नैतिकता, सम्पत्ति के अधिकारों के प्रति अपनी निश्ठा के साथ हिन्दू और मुस्लिमों को एक–दूजे के साथ भाान्तिपूर्वक जीवन में मदद करेगी क्योंकि दोनों धर्म बाज़ार की नैतिकता पर अधारित हैं।

ज़रा सोचिये

- पारसी उपनाम जैसे – दारूवाला, सोड़ावाला, स्क्रूवाला आदि श्रम के विभाजन पर आधारित होते हैं। पारसी भारत में एक सम्पन्न समुदाय है। उनका धर्म मुक्त बाज़ार के लिए क्या कहता है?
- जैन और सिक्ख धर्मों का इस बारे में क्या विचार है?
- बेहतर सरकार तभी मिल सकती है जब बेहतर लोगों को सरकार में लाया जाये। क्या यह कथन कुछ मायने रखता है? या फिर, क्या भाक्ति हमे ाा भ्रश्टाचार के लिए प्रेरित करती है?

15

स्वतन्त्रता एंव समानता

स्वतन्त्रता सर्वोच्च राजनैतिक मूल्य के रूप में

समाजवादी मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था की इस आधार पर भी आलोचना करते हैं कि यह असमानता को बढ़ावा देती है। उनका वि वास है कि राज्य के हस्तक्षेप व नियंत्रण से वे समानता को बढ़ावा दे सकते हैं। यही जवाहर लाल नेहरू का *समाज का समाजवादी ढाँचा* (Socialistic pattern of society) नामक महान् द नि था।

जो बाज़ार में वि वास रखते हैं वे समानता में वि वास नहीं रखते। वे स्वतन्त्रता में वि वास रखते हैं।

राज्य से आजादी

यानि कि हमें प्राकृतिक अवस्था के निकट होना चाहिए। इसी को एडम स्मिथ **प्राकृतिक स्वतन्त्रता** (Natural Liberty) की संज्ञा देते हैं। यदि हम प्रकृति को देखें तो हमें पेड़–पौधों व जन्तुओं में वृहद् स्तर पर विविधताएं दिखायी देती हैं। प्रकृति में छोटी घास, बड़े पेड़, वे सभी झाड़ियाँ, लताएं एवं बेल दिखाई देती हैं जो प्रकृति में पल–बढ़ सकती हैं। प्राकृतिक व्यवस्था में हमें समानता और एकरूपता नहीं मिलती। समाजवादी दृश्टिकोण – जिसे नेहरू

समाज का समाजवादी ढाँचा कहते थे – एकरुपता से कटी हुई झाड़ी (hedges) का दृश्टिकोण था, जिसमें सरकार माली की तरह कार्य करती है। वर्तमान में, स्वाभाविक रूप से माली ही अपने निहित स्वार्थों के लिए बगीचों को नश्ट कर रहा है। समाज रूपी बगीचा बिना माली के ज्यादा बेहतर रहेगा।

यह स्वतन्त्रतापूर्वक प्राकृतिक तरीके से बढ़ेगा। सरकारी नियंत्रण से मुक्त, *मुक्त बाज़ार*, मनुश्य प्रजाति को प्राकृतिक पारिस्थितिक तन्त्र (eco-system) उपलब्ध कराता है, जहाँ हम सभी अपनी वि ोशताओं एवं गुणों के आध ार पर अपना वि ोश स्थान तला ा कर सकते हैं और जीवन यापन कर सकते हैं। इसमें बड़े पेड़ भी होंगे और छोटी घास भी होगी, झाड़ियाँ भी होगीं और लताएं भी होंगी। हममें कुछ ऐसे लोग भी होंगे जो अपने कौ ालों के लिए बड़े पुरस्कार पायेंगे – जैसे सचिन तेन्दुलकर। किसी को भी जबरदस्ती कृत्रिम एकरूपता थोपने की कोि ा ा नहीं करनी चाहिए।

ध्यान देने वाली महत्वपूर्ण बात यह है कि स्वतन्त्रता सर्वोपरि है। स्वतन्तत्रता सर्वोच्च आर्थिक एवं राजनैतिक मूल्य है।

जब हम स्वतन्त्रता को सर्वोपरि स्थान देते हैं तो हम जो होना चाहते हैं और जो करना चाहते हैं वह होने और करने के लिए स्वतन्त्र होते हैं। यदि हम किसी अन्य मूल्य, जैसे – समानता को स्वतन्त्रता से उच्च स्थान देते हैं तो हम अपनी स्वतन्त्रता को व्यर्थ समस्या में खो देते हैं।

समाजवादियों ने कभी भी समानता को बढ़ावा नहीं दिया। उलटे, उन्होंने हमारी स्वतन्त्रता भी छीन ली। उन्होंने जी हूजूर, माई–बाप वाला वी.आई. पी. कल्चर (संस्क ति) पैदा कर दिया है, जिसमें प्रत्येक आम आदमी को अधिकारी (authority) के सामने झुकना और नाक रगड़ना पड़ता है।

हमें समाजवादियों के समानता के मिथ्या द र्ान को अस्वीकार कर देना चाहिए और इसके बजाय उनसे स्वतन्त्र होने का प्रयास करना चाहिए।

स्वतन्त्रता सर्वोपरि!!

ज़रा सोचिये

- ❖ हम इकट्ठा होकर, सरकार जैसा संगठन क्यों बनाते हैं?
- ❖ हम सरकार से क्या चाहते हैं?
- ❖ यदि हम यह सुनि चत करना चाहते हैं कि सरकार ज्यादा भाक्ति ाली नहीं हो, सरकारी अधिकारी भाक्ति का दुरूपयोग नहीं करें और सार्वजनिक जीवन में नैतिकता का बोलबाला हो, तो, हमें कौन से राजनैतिक मूल्य ऊपर उठाने चाहिए?
- ❖ समाज में असमानताएं होने से क्या लाभ हैं?

16

राजनीति

राजनीति क्या है ?

- मानवाधिकारों को समर्थन करने वाली टी– ार्ट पहनना *राजनीति* है।

- *''नाभिकीय हथियारों को रोको''* लिखा हुआ, कोई बड़ा सा स्टिकर अपनी कार पर लगाना, *राजनीति* है।

- स्लम–वासियों को किराया नियंत्रण पर भाशण देना *ज्ञान की राजनीति* है।

स्वतन्त्र लोगों के सार्वजनिक कृत्य राजनीति हैं।[8]

अर्थात् सक्रिय नागरिकता ही राजनीति है। किसी धर्मतन्त्रात्मक एवं केन्द्रीय राजनैतिक पार्टी में भाामिल होना एवं तथाकथित 'नेता' के आदे ों का अन्धानुकरण करना राजनीति नहीं हैं। यह गुलामी है और फासीवाद (Fascism) है।

स्वतन्त्र राजनीति करने के लिए राजनैतिक पार्टियों की कोई आव यकता

---

[8] यह परिभाशा **प्रो0 बर्नाड क्रिक** ने अपनी वृहद स्तर पर पढ़ी जाने वाली पुस्तक **''इन डिफेन्स ऑफ पॉलिटिक्स''** में दी है।

नहीं है। केवल सरकार का विरोध करना ही राजनीति नहीं है वरन एक प्रदूशणकारी उद्योग का विरोध करना भी स्वतन्त्र राजनीति है; एक धोखेबाज बहुराश्ट्रीय कम्पनी का विरोध करना भी स्वतन्त्र राजनीति है। जो नागरिक स्वतन्त्र राजनीति करते हैं वे अतुलनीय रत्न समान हैं और लोकतंत्र में नई भवांस फूँकते हैं।

आप भी इस प्रकार की राजनीति में भाामिल होकर स्वस्थ व सजग लोकतन्त्र में सहयोग कर सकते हैं।

तो स्वयं में वि वास रखिये और इस तथ्य में भी कि आप तभी सर्वश्रेश्ठ तरीके से जीवन यापन कर सकते हैं जब आपको ज्ञान प्राप्त करने के लिए, मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था में वि ोशीकृत होने के लिए, राजनीति करने के लिए और अपने आस–पास के संसार में सक्रिय रूचि लेने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय।

अपने पूरे हृदय के साथ स्वतन्त्रता में वि वास रखिये।

भारत में गैर–समाजवादी पार्टी बनाने के विरुद्ध एक कानून है। इसलिए यहाँ कोई मुक्त बाज़ार पार्टी नहीं है। लोकतंत्र सिर्फ समाजवादियों तक सीमित है–हम केवल समाजवादी विकल्पों में से चुनने के लिए स्वतन्त्र हैं। एक बार मिनू मसानी जैसे उदारवादियों के नेतृत्व में स्वतन्त्रता पार्टी बनी, जिसे इन्दिरा गाँधी द्वारा नश्ट कर दिया गया। इन्दिरा गांधी ने कानून में सं ोधन किया ताकि भविश्य में कोई नई मुक्त बाजार पार्टी कानूनी रूप से गठित न हो सके।

इसे ज़ोरदार तरीके से चुनौती देनी चाहिए।

पुनरावलोकन के लिए – मुक्त समाज के तीन स्तम्भ हैं :

● लोकतन्त्र की राजनैतिक स्वतन्त्रता (हमारे यहाँ यह सिर्फ समाजवादी दलों तक सीमित हैं)

● मुक्त बाज़ार की आर्थिक स्वतन्त्रता (हमारे यहां राज्यवाद {Statism} हावी है। स ाक्त मुद्रा {sound money} एवं सम्पत्ति के अधिकारों के साथ अनिवार्यतः मुक्त व्यापार का मार्ग खोलना चाहिए)

● उदार ि क्षा – जो स्वतन्त्रता का मूल्य सिखाती है (हमारे यहाँ सरकारी ि क्षा भार्महीन, सरकारी प्रचार मात्र है।)

एक सम्पन्न, स्वस्थ्य, स्वच्छ, जागरूक एवं मुक्त समाज के निर्माण के लिए अभी हमें बहुत लम्बा रास्ता तय करना है।

आइये! भुरू करें!!

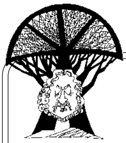

ज़रा सोचिये

❖ विभिन्न प्रकार के राजनैतिक पंथ (creeds) हैं जैसे साम्यवादी, समाजवादी आदि। जो आजादी में वि वास रखते हैं, वे स्वयं को उदारवादी (libertarian) कहते हैं। आप स्वयं को क्या कहते हैं?

❖ आप स्वयं को जो भी कहें – परन्तु आप अपनी राजनीति सर्वोत्तम तरीके से कैसे कर सकते हैं?

स्वस्थ्य लोक नीति के सिद्धान्त

1. नरक के रास्ते तथाकथित नेक इरादों से भरे–पड़े हैं।
2. स्वतंत्र लोग एक समान नहीं होते (सिवाय कानून की नजर में) और एक समान लोग स्वतंत्र नहीं होते।
3. सब अपनी चीजों का ही खयाल रखते है, जो सबका है अथवा किसी का नहीं है, उसका कोई खयाल नहीं रखता!
4. सही अर्थ ाास्त्र में यह देखा जाता है कि किसी नीति का सभी समूहों पर लंबे समय के लिए क्या प्रभाव होगा, ना कि यह कि थोड़े समय के लिए कुछ लोगों पर क्या प्रभाव होगा।
5. बाजार में अपना मत जाहिर करने के मामले में उपभोक्ता पर उसी तरह भरोसा करें, जैसे चुनाव में उसकी मतदान की क्षमता पर भरोसा करते हैं।
6. कोई भी व्यक्ति दूसरे के धन को उतनी सावधानी से खर्च नहीं करता, जितनी सावधानी से वह अपना धन खर्च करता है।
7. सरकार के पास किसी को भी देने के लिए कुछ भी नहीं सिवाय उसके, जिसे कि वह किसी और से लेती है।
8. जिस सरकार के पास आपको सबकुछ दे सकने की क्षमता है, उसके पास आपसे सबकुछ ले लेने की भी ताकत होती है।
9. कुछ लोग मुक्त उद्यम से असंतुश्ट हो जाते हैं, जब वह बिल्कुल सही तरीके से काम नहीं करता, जबकि वहीं वे सरकार से पूर्णतः संतुश्ट रहते हैं, तब भी, जब कि वह थोड़ा–सा ही काम करती है।
10. सतत् जागरूकता ही स्वतंत्रता की कीमत है।

सेंटर फॉर सिविल सोसाइटी : एक नजर में

शिक्षा, सु ासन, रोजगार, पर्यावरण, इत्यादि क्षेत्रों में भारत की त्रुटिपूर्ण सरकारी नीतियों में सुधार के लिए सेंटर फॉर सिविल सोसाइटी समुदाय और बाजार आधारित विचारों का एक बड़ा मंच उपलब्ध कराता है। इन विचारों को वर्तमान और भावी पीढ़ी के नेताओं के सामने रखकर सेंटर फॉर सिविल सोसाइटी भारत वासियों की उन्नति और समृद्धि के नित नये द्वार खोलने के संलग्न है। हम सीमित सरकार, कानून का भाासन, मुक्त व्यापार और प्रतियोगिता से परिपूर्ण बाजार के प्रबल समर्थक हैं।

सेंटर की स्थापना 15 अगस्त 1997 को इस उद्दे य को रेखांकित करते हुए की गयी थी कि विदे ी साम्राज्य से राजनैतिक आजादी हासिल करने के प चात् भारतीय स्वराज्य से आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आजादी हासिल करने की जरूरत है। हम नये स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी हैं।

सेंटर फॉर सिविल सोसाइटी एक स्वतंत्र, अलाभकारी भाोध एवं भौक्षिक संगठन है, जो नागरिक समाज में नव भाक्ति का संचार कर करोड़ों भारतवासियों का जीवन स्तर उन्नत करने की दि ा में प्रयत्न ील है। दरिद्रता और निरा ा की हालत में जीवन बसर कर रहे भारत के मेहनतक ा और बुद्धिमान लोगों के जीवन का कटु विरोधाभाश हमारी प्रेरणा का मुख्य स्रोत है। लेकिन हम प्राथमिक विद्यालय, चिकित्सा केंद्र अथवा साफ–सफाई के कार्यक्रम नहीं चलाते हैं। हमारे काम करने का ढंग कुछ अनोखा है। हम भाोध, संगोश्ठी और प्रका ान के माध्यम से लोगों के विचारों मतों और सोचने के तौर–तरीकों को बदलने का प्रयास करते हैं। हम 'कानून, स्वतंत्रता और जीविका'; 'समुदाय, बाजार और पर्यावरण'; 'सु ासन'; 'सबके लिए ि ाक्षा'; 'कानून का भाासन'; तथा 'वि व और मैं'; से संबंधित विशयों में विचार–विम ा और मतनिर्माण का कार्य करते हैं।

क्या सचमुच जनसंख्या गरीबी का कारण है?

क्या सरकार वास्तव में रोजगार उपलब्ध करा सकती है?

भारत की गरीबी कैसे दूर होगी?

पर्यावरण की रक्षा कौन करे?

समानता गलत क्यों है?

राजनीति क्या है?

क्या हम स्वतंत्र हैं?

लेखक परिचय

सौविक चक्रवर्ती (पूर्व आई.पी.एस. अधिकारी) दी इकॉनॉमिक टाइम्स के वरिष्ठ सहायक सम्पादक रह चुके हैं। इन्होंने बिजनेस इकॉनॉमिक्स में एम.ए. दिल्ली वि.वि. से, लोक प्रशासन एवं जन नीति में एम.एस.सी., लंदन स्कूल ऑफ इकॉनॉमिक्स एण्ड पॉलिटिकल साइंस से तथा न्यू पब्लिक मैनेजमेन्ट में डिप्लोमा इण्टरनेशनल एकेडमी फॉर लीडरशीप, जर्मनी से किया है। उन्हें इण्टरनेशनल पॉलिसी नेटवर्क, लंदन द्वारा पत्रकारिता में स्वतंत्रता को प्रोत्साहन देने हेतु प्रथम फ्रेडरिक बास्तिया पुरस्कार प्रदान किया गया है। उनके व्याख्यान देश विदेश के संस्थानों यथा आई.आई.एम. कोलकाता, आई.आई.एम. लखनऊ, सिम्बायोसिस, जेवियर इन्स्टीट्यूट आदि में हो चुके हैं।

कौशल किशोर (मूलत: विज्ञान स्नातक) ने चौ० चरण सिंह वि.वि., मेरठ से राजनीति विज्ञान में एम.ए. किया है। उन्होंने बी.एड. एवं एम.एड., एम. जे.पी. रूहेलखण्ड वि.वि., बरेली से किया है तथा शिक्षा शास्त्र में यू.जी. सी.–नेट की परीक्षा उत्तीर्ण की है। वे शिक्षा शास्त्र में पी.एच.डी. कर रहे हैं एवं वर्तमान में शिक्षा संकाय, जगद्गुरू रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट में प्रवक्ता पद पर कार्यरत हैं। एक शिक्षक प्रशिक्षक के रूप में उनकी विशेषज्ञता भावी शिक्षकों को अनुसंधान विधियाँ, मापन एवं मूल्यांकन तथा निर्देशन एवं परामर्श के अध्यापन में है। श्री कौशल सन् 2003 में सी. सी. एस. के संपर्क में आए एंव सेंटर की विभिन्न संगोष्ठियों में उन्होंने, हमेशा अपनी सक्रिय भागीदारी निभायी है।

मुल्य – 100 रुपये

सेंटर फॉर सिविल सोसाइटी
के–36, हॉज खास एंक्लेव, नई दिल्ली 110016
दूरभाष: 26537456 फैक्स: 26512347
ई–मेल: ccs@ccsindia.org, www.ccsindia.org

ISBN 81-87984-19-8

कवर डिज़ाईन : मध्यमा ऐस